॥ ओ३म् ॥

...था साकार पूजा

...। च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे॥

सामवेद मं० २९२

हे परमेश्वर ! मेरी माता और आप दोनों ही मेरे लिये समान हैं। जैसे पुत्र माता की सेवा करता है वैसे ही मैं आपकी सेवा करूंगा। माता जैसे पुत्र को पालती है वैसे ही आप मेरा पालन करें। ज्ञान-धन, भक्ति-धन और वाक्सिद्धि आदि के लिये आप और मेरी माता दोनों ही मेरा रक्षण करें।

—प्रभु आश्रित

॥ ओ३म् ॥

मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद ॥

निराकार तथा साकार पूजा

(परमेश्वर का दूत)

—❀०❀—
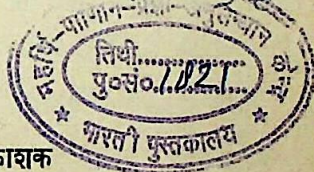
लेखक व प्रकाशक

प्रभु आश्रित

—:❀:—

प्रथमावृत्ति २०००]   संवत् २०१८   [मूल्य १४० न०पै०

ओ३म्
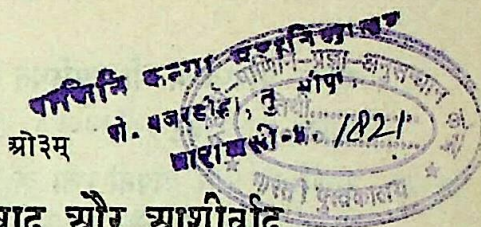
समर्पण, धन्यवाद और आशीर्वाद

पाकिस्तान से आने पर कई वर्षों से मेरी सन्तान मेरी अनुमति से मेरी पूज्या माता जी, नानी जी की बरसी प्रति वर्ष मोक्षदा एकादशी तिथि पर अपने गृह पर मनाते हैं। एक बृहद् यज्ञ करते हैं जिसमें प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शान्ति प्रकरण, सामान्य प्रकरण की आहुतियों के साथ एक सहस्र गायत्री मन्त्र की आहुति देते और कभी किसी वर्ष किसी एक वेद का यज्ञ भी करते, यथा शक्ति प्रसाद लंगर और विधवा अनाथों की सेवा करते। ला० लोकनाथ और रामप्यारी भी मेरी सन्तान के साथ शामिल रहती, ला० गणेशदास तथा शान्ति देवी जी प्रबन्ध कार्य में मुख्य सहायक रहते हैं। मेरे और प्रेमी सत्सङ्गी बहुत से महानुभाव भी दर्शन देते।

मेरा अपनी माता के प्रति मां के सम्बन्ध के साथ गुरु भाव रहता है और नानी जी के प्रति पिता का।

इस वर्ष मोक्षदा एकादशी १८ दिसम्बर को होगी। मैं उत्तराखण्ड में आ जाने के कारण शामिल नहीं हूँगा,

स्यात् भविष्य में भी उपस्थित न हो सकूं। इसलिए यह छोटा सा ट्रेक्ट (Tract) उनकी पुण्य स्मृति में उनके गुणों को और अपनी रक्षा के वृत्तान्त को लिखकर अपनी पूज्या माता जी और नानी जी के समर्पण करता हूँ।

२. चिरञ्जीव सुरेशकुमार जी सुपुत्र बाबू युधिष्ठिर-लाल लाजवन्ती जी जंगपुरा बी०, नई दिल्ली जो अपने माता पिता के बड़े आज्ञाकारी भक्त हैं, उनकी दी हुई भेंट से यह लघु पुस्तिका छपवा रहा हूँ. उन सब को धन्यवाद के साथ आशीर्वाद भी देता हूँ कि प्रभु देव उन्हें अधिक धर्म भक्ति भाव प्रदान करें और जीवन सफल करें।

३. मां की कविता का बहुत अच्छा भाग माता विद्यावती जी धर्मपत्नी पूज्यपाद श्री पं० धर्मदेव (देवमुनि) जी विद्यामार्तण्ड की पुस्तक सोमसुधा से लिया है, उनका बहुत बहुत धन्यवाद !

ओ३म् शम्

वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर
२५-११-६१

प्रभु आश्रित

❀ ओ३म् ❀

निराकार तथा साकार पूजा

पूर्वार्द्ध

परमेश्वर का दूत

भाग्यशाली मानव !. संसारी मां—प्रथम

असंख्यात प्राणी ऐसे हैं जिनके माता पिता नहीं, वे क्षुद्र जन्तु मल से उत्पन्न होते हैं और असंख्यात प्राणी ऐसे हैं जिनके भाग्य में मां का दुग्ध नहीं जैसे पक्षी तथा अण्डज योनियां और असंख्यात प्राणी ऐसे हैं जिनको माता का दुग्ध तो प्राप्त है परन्तु माता की गोदी प्राप्त नहीं, जैसे पशु और कोटि प्राणी ऐसे हैं जिनको माता की गोदी और दुग्ध तो प्राप्त है, परन्तु आशीर्वाद प्राप्त नहीं और श्रेष्ठ प्राणियों से उन पर दण्डे पड़ते हैं, दण्ड-पात होता है जैसे वानर !

परन्तु ओ मानव ! एक तू ही बड़ा भाग्यशाली है जिसे ये तीनों सौभाग्य प्राप्त हैं, मां की गोद, मां का दुग्ध और मां का प्यार, प्रेम आशीर्वाद और मां का सत्कार ! अतः—

सावधान रह ! वानर की चाल न चलना ! वानर न बनना ! वानर खाता पीता तो मनुष्यों की भांति है, परन्तु चाल पशुओं की चलता है। वानरी दुग्ध तो मनुष्यों की तरह पिलाती है, परन्तु बच्चे को उत्पन्न पशुओं की तरह करती है। उसके हाथ तो मनुष्यों के से हैं परन्तु न कमाते हैं न दान देते हैं अपितु वे चोरी और डाका मारने वाले हैं।

स्मरण कर ! तुझे मां अपनी गोद में कैसे थपक २ कर प्यार और सत्कार की लोरियां गा-गाकर सुलाती थी। और कैसे प्रेम युक्त मधुर शब्द बोल-बोलकर तुझे जगाती थी। तेरी आंखों की गिगें और मैल को जिन पर मक्खियां भिनभिनातीं, तुझे काटतीं, दुःख देती और रुलाती थीं, किस चाव और स्फूर्ति से कभी गरम कभी शीतल जल से मल मल धोकर तेरी आंखें खोलती थी ! आह !--

मेरी प्यारी अम्मां ! मेरी जान अम्मां !
न कुछ मुझमें ताकत* थी जिस आन+ अम्मां।
तुम्हीं को था हर दम मेरा ध्यान अम्मां !
मेरी प्यारी अम्मां ! मेरी जान अम्मां ॥

*शक्ति। +समय।

ओ मानव ! आंखें खोलकर देख ! कृतघ्न न बनना ! कृपण न बनना, कवि ने शिशु की उस अवस्था और मां के संरक्षण का चित्र निम्न मनोरम शब्दों में यों खींचा है:—

१—मां के बिना मैले बच्चों को, कोई भी गले लगावे नां।
२—बिना धोए मैल के, मां को चैन आवे नां॥
३—भूखा बच्चा मां को मांगे, किसी और के पास जावे नां।
४—रूठा बालक मां मनावे, और किसी से माने नां॥
५—बहिन-भाई सब जोर लगावें, बाप दादा के जावे नां।
६—प्यार पुचकार भी काम न आवे, लड्डू पेड़ा खावे नां॥
७—मां की मीठी लोरी से, थपके हाथ की पोरी से।
८—मां की प्यारी झोली में, नींद फिर क्यों आवे नां॥
९—मां के स्मरण दर्शन से, मन का मैल है धुल जाता।
१०—जो मांको देखेघटघट*में,उसके घट+का पट खुलजाता
११—प्यार में मां की बलिहार है, मां की मार सुधार है।
१२—जिस मारके पीछे प्यारमिले,जिस मारसे प्यारी मिलजाये
१३—वारी जाऊं उस मार पै मैं,जिससे महतारी मिल जाए॥

मैं जाऊं जिधर मां आवे नजर
मेरा ख्याल वह रखती है इस कदर॥

*पलपल। + घड़ा।
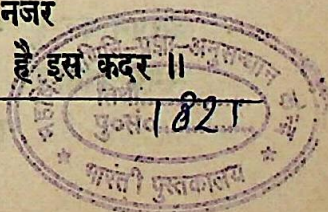
मुझे छोड़ अकेली जाए ना
कहीं फिरती रहूँ न मैं दर बदर ॥
मेरे सम्मुख रहे वह सकल समय
कहीं मट्टी से मुख लूं न मैं भर ॥
हर स्थल में मेरे साथ चले
कहीं भूल न जाऊं मैं अपना घर ।
जब भी मैं गिरने लगूं कहीं
मुझे लेवे बचा रख अपना कर ॥
मुझ को प्यारी महतारी बिन
इक छिन भर भी न आए सबर ॥
(सोमसुधा पृ० ४६)

मेरी मां मेरी मां मेरी मां मेरी मां ।
तुझे भूलूं कभी नां, कभी नां कभी नां ॥
तेरी लख लख लीला न्यारी,
खिल जाए दिल की फुलवारी ।
तू ही है सच्ची महतारी,
तुझे भूलूं कभी नां ॥
जो शुभ कर्म करूं मैं दिन में,
अरपन कर दूं तव चरणन में ।
समय बिताऊं नाम जपन में.
तुझे भूलूं कभी नां ॥

तेरे नाम की खोलूं शाला,
जिसमें धुल जाए मन काला।
पीकर तेरा प्रेम प्याला,
तुझे भूलूं कभी नां॥

(सोमसुधा पृ० ५१)

मां के गुणों को—उपकारों को देख !

ओ मानव ! अपने उत्पत्ति समय को याद कर ! तू निस्सहाय पैदा हुआ ! तेरा सहारा कौन बनी ? जब तू पार्श्व भी नहीं बदल सकता था, ऊआं ऊआं की पुकार पर पुकार करता था यही ! तेरी प्यारी-प्यारी मां ही तो थी जो तेरी पुकार को सहार न सकती थी, तुझे प्यार करती थी। तेरी चिल्लाहट, बिलबिलाहट को सुन झट तुझे छाती से लगा कर अमृत दूध पिलाती थी, शान्त और मौन कराती थी।

ओ मानव ! जन्मते ही सर्व प्रथम प्यार तुझे किसने दिया ? मां ने ! मां ने ! सर्व प्रथम तुम्हारे सिर को कोमल हाथ से किसने स्पर्श किया ? मां ने ! दया की भण्डार मां ने ! मां तो तुझे अपने नेत्रों की ज्योति समझती है, तेरे बिना उसके मन को चैन नहीं, शान्ति नहीं। तुझे ही छाती से लगा कर उसे शीतलता और

आनन्द आता है। तू एक हो और तेरी मां के गृह का प्रांगन बड़ा हो तो समस्त भवन गृहको तुझसे भरपूर पाती है। तेरे बिना उसे अंधियारा प्रतीत होता है, धन, सम्पत्ति, मान, प्रतिष्ठा सेवक भृत्य तेरे साथ ही उसे सुहावते और भाते हैं। तेरे बिना सब के सब उसे नीरस भासते हैं। तेरे साथ ही उसका जीवन और उत्साह है। अपना सर्वस्व तुझ पर वार देती है, मां के प्राण शिशु के उदर में वास करते हैं। बालक को खिला कर आप तृप्त हो जाती है। उत्तम से उत्तम वस्तु बालक के लिए छिपा कर रखती है। कितना प्रेम और त्याग है।

स्मरण कर ! कभी तू मां के सिर पर चढ़ जाता। कभी पृष्ठ पर आरूढ़ हो जाता तो वह गद्गद हो जाती। तू छाती से लिपट जाता अथवा गोदी में लेट जाता, तब भी वह खुश होती। कभी तू मुक्कों से पीटने लग जाता, कभी तू दुपट्टा खींचने लग जाता, तेरी क्रीड़ाएं उसे सब भातीं।

जब तू कभी रूठ जाता और मुख सुजा लेता तो मां तुझे पुचकारती, तू भाग जाता तो तेरे पीछे पीछे दौड़-दौड़कर तुझे मनाती और खुशामद मिन्नत करती। याद न हो तो अपने ही बालक को देखकर याद कर !

भंगिन बन तेरे मल मूत्र को उठाती।
धोबिन बन तेरे मैले वस्त्र स्वच्छ करती।
कुलालिन बन तेरे लिए जल भरती।
सेविका बन तुझे उठाये फिरती, खिलाती पिलाती।
पाचिका बन तेरे लिए भोजन तय्यार करती।
भृत्य बन तुझे वस्त्र पहनाता और—
माता बन तुझे प्यार करती और गोदी में सुलाती।
उपकार मां के गिनाए न जाएं,
जन्म एक में वह सिखाए न जाएं।

और भी स्मरण कर! 'माता स्वभाव से, पिता सामर्थ्य से गुरु योग्यता से और परमेश्वर अधिकार से देता है।

माता का अर्थ है निर्माता! परमेश्वर शरीर का निर्माता है। माता, पिता, गुरु ये माता हैं. निर्माता हैं जीवन के। स्मरण कर और गांठ बांध।

जब तू शिशु था, तेरी मन्द-मन्द मुस्कान पर माता वारे-वारे जाती थी और तुरन्त उठा कर तुझे छाती से लगाती, तेरे मुख को चूमती थी, क्यों? इसलिए कि तेरी मुस्कान निरहंकार, निःस्वार्थ स्वाभाविक होती थी। अब भी तू माता के सम्मुख निरहंकार और निःस्वार्थ मुस्कराया कर और माता की आशीर्वाद को पाया कर!

बच्चा प्यारा क्यों ?

बच्चा सब को प्यारा लगता है। 'बच्चे' का नाम ही इसलिये बच्चा है कि वह संसार के विषयों, पापों से बचा हुआ (अस्पृष्ट) है।

जब मनुष्य बड़ा हो जाता है, सांसारिक बुद्धि को महान् समझता है तब उसकी मुस्कान भी नाना रूप धारण कर लेती है। कामिनी को कामी का देख कर हंसना और प्रकार का, द्वेष क्रोध से अपने शत्रु की निन्दा को सुन कर हंसना और प्रकार का, लोभी का हंसना कृत्रिम मोह से हंसना और प्रकार का, अहंकार से हंसना और प्रकार का--इन समग्र प्रकार की मुस्कानों में अपवित्रता भरी रहती है और जो मुस्कान निरहंकार होती है वह हृदय को, आनन्दमय कोष को शुद्ध कर देती है।

ओ मानव ! संसार में यदि अपने से तुम को बड़ा देखना चाहते हैं, तेरी प्रशंसा (यश) सुन-सुनकर यदि कोई फूले नहीं समाते, तेरी गिला, शिकायत, अपयश यदि कोई सहन नहीं कर सकते और तेरे पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करते हैं तो वे तेरे माता पिता ही हैं। केवल तेरे मात पिता ही हैं।

भ्राता हो, बहनोई हो, चाचा हो, मामा हो, कोई

भी अपने से बड़ा अपनी सन्तान से बड़ा किसी को मन से देखना पसन्द नहीं करता अथवा सन्तुष्ट नहीं होता। एक माता पिता का सम्बन्ध प्रभु देव ने ऐसा बनाया है कि खोंचा विक्रेता अथवा एक श्रमी कुली भी हृदय से चाहता है कि मेरा पुत्र मुझ से तो क्या, सब से बढ़ जाए। सेठ, धनी बन जाए। डिप्टी कमिश्नर, मन्त्री बन जाए। वह अपना अपमान या हानि नहीं समझता। अपने पुत्र की बड़ाई में प्रसन्न ही प्रसन्न होता है।

ओ मानव ! तेरी उड़ान, तेरे विचार निःसन्देह बहुत ऊंचे हैं, तू चाहता है कि मैं सांसारिक क्षेत्र का परित्याग कर ऐसा बनूं कि संसार का उच्च से उच्च व्यक्ति और शक्ति भी मेरे आगे झुके व नमस्कार करे। अर्थात् तू महान् से महान् शक्तिमान् प्रभु का प्रिय बनना चाहता है। प्रभु भक्त बनना चाहता है और सिद्धि प्राप्त करना चाहता है जिस सिद्धि के सामने सांसारिक प्राणी, बड़ी-बड़ी हस्तियां सिंह और हस्ती भी तेरे पास खिंचे चले आवें। यह विचार अत्युत्तम और श्रेष्ठतम विचार है। मानव जन्म का ध्येय ही प्रभु प्राप्ति है जिसके प्राप्त कर लेने पर कोई और वस्तु प्राप्तव्य अथवा कमनीय नहीं है।

अतः आओ, इस कामना पूर्ति का मार्ग खोजो।

प्रभु को कैसे बसाए

जिसे वह परमेश्वर मिल गया उसने अपने हृदय में उसे बसा लिया। उस प्रभु का घर बना लिया जिसे वेद भक्त यों कह रहा है :—

तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ॥ आर्याभिविनयः ५५
ऋ० म० २-८। १०। मन्त्र ३॥

भावार्थ—हे अन्तर्यामिन्! हमारे हृदय में सदा स्थिर हो। मौन से ही सर्वोत्तम ज्ञान दो। कृपा करके हमको अपने रहने के लिये घर ही बना दो।

प्रिय! यदि उस प्रभु को अपने शरीर से प्रकट करना चाहते हो तो ब्रह्मचर्य से शरीर को कान्तिमान्, देदीप्य-मान बनाओ।

यदि इन्द्रियों में बसाना चाहते हो, इन्द्रियों से प्रकट करना चाहते हो तो निष्काम शुभ कर्म कमाओ। यदि मन से उस प्रभु को प्रकट करना चाहते हो तो मन को सुमन उपासना युक्त बनाओ। राग-द्वेष से रिक्त करके उसमें उसी एक को बसाओ।

यदि बुद्धि से प्रकट करना चाहते हो तो सत्य ज्ञान से पवित्र शुद्ध बनाओ। यदि चित्त से प्रकट करना चाहते हो तो बिना प्रभु स्मरण के कोई स्मृति ही न रहे। सबकी

विस्मृति ही कर दो। स्वप्न में भी प्रभु के बिना किसी और की स्मृति न आए अथवा किसी और का सिमरन न हो। यदि प्रभु के आत्म रूप में प्रवेश करना चाहते हो तो अहंकार सहित उसी के अर्पण हो जाओ।

दो विधियाँ

केवल दो ही विधियां हैं, प्रभु को बसाने की, एक वीर बनकर दूसरा अर्पित होकर। वेद भगवान् का परामर्श है—

> यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः।
> आ जुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम्॥
>
> साम० म० ८२॥

भावार्थ यदि मनुष्य का काम क्रोध आदि शत्रुओं का जीतने वाला हो तो वह परमात्मा को अपने हृदय में प्रकट कर सकता है एवं यदि ईश्वर में अनुषक्त मन को उस ईश्वर के ही अर्पण कर रखे तो मोक्ष रूप दिव्यानन्द को भोगता है। इसके अतिरिक्त यदि परमात्मा स्वयं चाहें तो अज्ञानी जीव पर दया कर देते हैं :—

> जातः परेण धर्मणा यत् सवृद्भिः सहाभुवः।
> पिता यत् कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः॥ साम० ९०॥

हे परमेश्वर! आप कारुण्य, वात्सल्य, औदार्य आदि धर्मों से युक्त होकर प्रकट हुए हैं। जो भक्त एक चित्त होकर आपकी उपासना करते हैं आप उनके निकट

निवास करते हैं, यही कारुण्य, वात्सल्य आदि का फल है। परन्तु जब अज्ञानी जीव की रक्षा करना चाहते हैं तो उसे श्रद्धा रूप माता और विद्वान् उपदेशक, गुरु स्वयं मिल जाते हैं।

प्रिय मानव ! हम तो अज्ञानी हैं, अबोध हैं और असमर्थ भी हैं। न हम में ब्रह्मचर्य का बल और तेज, और न हमारे पाप रहित इन्द्रियों के शुभ कर्म, न हमारा मन स्वस्थ और शान्त, अपितु सदैव चञ्चल, राग-द्वेष में उलझा रहने वाला, न हमें सत्य ज्ञान की खोज की योग्यता, न समय अवकाश, हमारी सांसारिक विचारों में विचरने वाली व्यवहारिक प्रज्ञा कैसे सत्य की खोज करे। चित्त निर्मल नहीं है। अनगिनत वासनाओं और संस्कारों से अटा पड़ा है तो कैसे हम अहंकार और आत्म समर्पण करें परमात्म देव के। हमें दृष्टिगोचर ही नहीं हो रहा। वह तो निराकार है।

एक ही मार्ग

तो एक ही मार्ग है, यदि सत्य कामना है तो वह है साकार पूजा जिसे प्रत्येक भाग्यशाली मनुष्य बड़ी सुगमता से कर सकता है। वह कल्याणकारी है—"वह साकार पूजा" जो मानव मस्तिष्क का आविष्कार नहीं, विद्वानों अथवा बुद्धिमानों की बनावट नहीं, मनमानी कपोल कल्पित

भी नहीं, जिसे सारी सृष्टि माने। न नास्तिक निषेध कर सके न आस्तिक, अपितु जिसे स्वयं प्रभु देव ने अपना दूत अथवा प्रतिनिधि बना कर संसार में भेजा हो, बनाया हो, जिसे अपना रूप और अपना गुण, कर्म, स्वभाव दिया हो—वह है तेरी मेरी अम्मां—प्यारी अम्मां—प्रत्येक मनुष्य की अपनी ही अम्मां।

वह कैसे ? लो सुनो—

प्रभु का रूप—प्रतिनिधित्व, दूतत्व

१—प्रभु समस्त संसार को गर्भ में रखने वाला है, वह हिरण्यगर्भ कहलाता है—यह मेरी मां भी अपने गर्भ में रखती है ? किसे ? हिरण्य (जीवात्मा) को।

२—दूसरा रूप प्रभु का है ब्रह्मा का, वह प्रसव करता है, पैदा करता है संसार को, सृष्टि को और मां भी प्रसव करती है, पैदा करती है मनुष्य को ! जो सृष्टि और स्रष्टा के रहस्यों को समझने के लिये संसार में आया।

३—तीसरा रूप प्रभु का है विष्णु का, जो व्यापक होकर पालक है, सब जीवों का पालन पोषण करता है अपनी गुप्त कला से ! जो पाषाण में स्थित जन्तु को भी पाल रहा है और मां तो साक्षात् विष्णु का रूप है अपनी सन्तान के लिए ! किस चाह, प्रेम, उदारता से, दया से प्रेरित होकर अपने स्तनों से, जीवन स्रोत से अपने पुत्र

को निःशुल्क अमृत दुग्ध पिलाती है। किस गुप्त कोष से वह रत्न निकालती है। यदि माता को दुग्ध मोल लेना पड़ता तो कब तक लेती ? ग्रीष्मऋतु में फट जाता, विकृत हो जाता, शीत ऋतु में हिम समान जम जाता। और यदि मां निर्धन हो तो मोल कहां से लेती ? वाहरे प्रभो ! तू ने अपना विष्णु रूप ! गुप्त कोष ! फिर दया का स्वभाव--प्रेम से मां के हृदय को भर दिया ! जब बालक रोवे, तत्काल दया से आर्द्र होकर प्रेम से अपना स्रोत बहा दे। सत्य कहा है--

"मात्रा समं नास्ति शरीर पोषणम्।"

४--चौथा स्वरूप है परमेश्वर का शिव का, जो कल्याणकारी है। मां जैसा संसार में और कोई कल्याण चाहने वाला नहीं है। दुःखी बालक को रात भर गोद में उठाय बिना विश्राम के बिता देती है। शीत ऋतु में बालक पुनः-पुनः मूत देता है, उसे शुष्क वस्त्र बिछा-बिछा सुलाती है, आप गीले वस्त्रों पर बिताती है। एक-दो दिन नहीं ! वर्षों बिताती है। यह तो कही साकार की— प्रभु के दूत की मौखिक वार्ता। अब देख अपने नेत्रों से क्रियात्मक रूप।

परमात्मदेव ने जो भक्त के लिए नमस्करणीय है, वन्दनीय है, पूजा के योग्य है। जन्म से माता ही को पुत्र के

लिए वन्दनीय प्रकट किया ! नौ मास पर्यन्त बालक का सिर माता के गर्भ में उलटा लटका हुआ माता के चरणों में झुकाये रखा और जब प्रसव का समय आया, माता की लातें पसर गईं और पीड़ा लगने लगी। बालक का सिर सीधा माता के चरणों में नमस्कार करता हुआ बाहर संसार में आया। सर्व प्रथम नमस्कार, वन्दना परमात्मा ने मां के चरणों में ही कराई।

परमात्मा तो सर्वाधार है, निराकार है और मां अपने बालक की जीवनाधार है, साकार है; जीवन आधार को ही नमस्कार कराई ! अब विचार कर ! यदि बालक का सिर पहिले माता के चरणों में सीधा बाहर न आये, उलट जाए तो कितना कष्ट होता है कभी-कभी तो डाक्टर बन्द बन्द काट कर बाहर निकालते हैं, यह है प्रभु आज्ञा के विपरीत चलने का परिणाम---जो बालक माता को नमस्कार करते बाहर गर्भ से नहीं आना चाहता, वह अपने जीवन से भी हाथ धो बैठता है।

प्यारे मानव ! अब तू समझ गया होगा, इस प्रसव दृश्य को ! और दार्ष्टान्त को भी ! मानव का बालक जन्म से स्वभाव सिद्ध चाहे वह आङ्गल भाषा बोलने वाली माता के गर्भ से आङ्गल स्थान में उत्पन्न हो अथवा पश्तो बोलने वाली अथवा अरबी बोलने वाली माता के गर्भ से

अफगानिस्तान या अरबिस्तान में पैदा हो,चाहे वह हिन्दी बोलने वाली माता से हिन्दुस्तान में पैदा हो, वह किसी देश विशेष की भाषा नहीं बोलेगा। जन्मते ही उस निराकार परमात्मा की पुकार 'ऊआं-ऊआं' अ उ म् से ही करेगा। वह ओ३म् ओंकार निराकार की तो पुकार करता है और जन्म देने वाली साकार--प्रभु के दूत--माता को नमस्कार करता है। नमस्कार से भक्ति प्रारम्भ होती है तो यह "माता भक्ति की भूमिका रूप" है--

जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये।
अयं ध्रुवा रयीणां चिकेतदा॥ साम० १०१॥

अर्थात् भक्ति भूमिका रूप माताओं से सेवित परमेश्वर! प्रकट हुए आप अपने लोक की प्राप्ति के लिये मुझे बुद्धि दीजिये। वह परमेश्वर ज्ञान दान का सुस्थिर आश्रय है अतः वह ज्ञान दान का दाता है।

जिस प्रकार सारी पुस्तक का सार भूमिका से ही प्रकट होता है, उसी प्रकार भगवान् की सारी सृष्टि रूपी पुस्तक की भूमिका माता पुत्र की भक्ति है।

भक्ति की नींव श्रद्धा है और श्रद्धा साधक योगी की माता है। भक्त तो परमात्मा से यही कहता है--

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

वेद को भी वेद माता कहते हैं। वरदा वेद माता!

वेद आज्ञा

गायत्री उपासना भक्ति के मन्त्र को भी गायत्री माता कहते हैं। वेद ने भगवान् को भी स्वयं इन्हीं शब्दों में दर्शाया:—

त्वं हि नः पिता वसो, त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे॥

यद्यपि परमेश्वर की न कोई माता है न पिता और न ही वह किसी का माता पिता है तब भी वेदों में अनेक स्थलों पर परमेश्वर को माता और पिता के नाम से बार-बार सम्बोधित किया है।

माता का अर्थ मान कराने वाली भी है।

माता पिता पुत्र का सम्बन्ध

माता पिता पुत्र का सम्बन्ध ऐसा प्रिय है कि वेद ने परमात्मा को इन तीनों नामों से इकट्ठा पुकारा है:—

अदितिर्माता स पिता स पुत्रः॥ (आर्याभिविनय मन्त्र १७)
ऋ० म० १-६। १८। १०॥

अर्थात् आप प्राप्त मोक्ष जीवों को अविनश्वर सुख देने और (माता) अत्यन्त मान करने वाले हो (स पिता) सो, अविनाशी स्वरूप हम लोगों के पिता और पालक हो और (स पुत्रः) सो ईश्वर आप मुमुक्षु धर्मात्मा और विद्वानों को नरक आदि दुःखों से पवित्र और (त्राण) करने वाले हो।

सम्बन्ध जोड़ो !

ओ भक्तिप्रिय मानव ! परमेश्वर की भक्ति में परमेश्वर से सम्बन्ध जोड़ना पड़ता है। किस रूप से भगवान् को भक्त पुकारे। किस रूप में उसे अपने हृदय मन्दिर में बसावे।

जिन सम्बन्धों में बहुत अन्तर है, दूरी है जैसे राजा और प्रजा का, स्वामी और सेवक का। उनसे तो कोई लाभ विशेष नहीं। जो सम्बन्ध दूरी को गुम कर देने वाला है, एक करदे वह सबको प्रिय लगता है जैसे माता पिता और सन्तान का, पति और पत्नी का, गुरु और शिष्य का, मित्र और मित्र का।

मित्र और मित्र तो बराबर होते हैं, हम तो परमेश्वर के बराबर हैं नहीं। सबसे सुगम और दया पात्र बनने और सम्पत्ति के वारिस (उत्तराधिकारी) बनने का सम्बन्ध तो माता पिता और पुत्र का है या पति पत्नी का है। पति पत्नी का सम्बन्ध तो जीवन काल में बाद में पैदा होता है, माता पिता और पुत्र का सम्बन्ध तो जन्म दिन से ही प्रारम्भ होता है इसलिए मुझे तो माता का सम्बन्ध बहुत प्रिय लगता है जिसे स्वयं परमात्मा ने अपने सारे रूप, गुण हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा, विष्णु शिव के माता को

दिये हैं। पुत्र तो कुपुत्र बन ही जाता है परन्तु लोकोक्ति है कि माता कभी कुमाता नहीं बनती।

दृष्टान्त—कहते हैं दो देवियों में घनिष्ठ मित्रता थी। दोनों के पुत्र नहीं था। प्रभु कृपा से एक के पुत्र हो गया तो दूसरी ने उसे अपनी गोद में पालना शुरू किया। अपने साथ सुलाना, खिलाना, पिलाना, वह दोनों माताओं के पास रहता। वे दोनों इकट्ठी रहती थीं, दोनों को माता कहता। उसे स्वयं ज्ञान न था कि मैं किसका पुत्र हूँ। कुछ बड़ा हुआ, दोनों देवियों में झगड़ा होगया और जुदे-जुदे गृहों में रहने लगीं। जन्मदात्री माता ने कहा कि मेरा बालक मुझे दे दो। पालने वाली कहने लगी तेरा बच्चा है ही नहीं। बालक तो मेरा जाया है। अन्त में मामला राजा के पास गया। राजा ने बालक से पूछा, कि तेरी माता कौन है? कहा, दोनों हैं मुझे ज्ञान नहीं मैंने किसके गर्भ से जन्म लिया। अभियोग खूब चला परन्तु यथार्थ ज्ञान न हो सका। अन्त में राजा को राजेश्वरी धर्मपत्नी ने कहा कि यह अभियोग स्त्रियों का है, इसका निर्णय मैं करूंगी।

निश्चित तिथि पर राजेश्वरी राजा के साथ सिंहासन पर विराजमान हुई। कहा बोलो किसका लड़का है। सत्य सत्य कहो। दोनों ने कहा, मेरा है! मेरा है। राजे-

श्वरी ने आज्ञा की कि इस बालक को चीर कर आधा-आधा बांट लो, क्यों! स्वीकार है? पालने वाली बोली, हां ठीक है। दूसरी ने कहा, राजमाता! मुझे स्वीकार नहीं, इसी के पास ही रहने दो। जीवित तो रहेगा। मैं देख देख कर अपना मन शान्त कर लिया करूंगी। तब राजमाता ने कहा, बच्चा इसी माता का जाया है, इसी को दे दो और दूसरी बनावटी मां को कारावास में डाल दिया। इसलिये माता कभी कुमाता नहीं बनती।

अरे भाग्यवान् मानव! जितनी आशीर्वादें माता देती है उतनी आशीर्वादें और कोई नहीं देता। जैसे अथर्ववेद काण्ड १६, सूक्त ७१, मन्त्र ६ में गायत्री को 'वरदा वेदमाता' के नाम से दर्शाया गया है। जो अपने उपासक भक्त को सात वरदान देती है। ठीक यह हमारी मानव माता भी वही की वही आशीर्वादें देती है। माता कहती है:—

माता कैसी होती है

वत्स! (१) तेरी दीर्घायु हो, (२) तेरी सिहत की बादशाही हो अर्थात् सदा स्वस्थ रहो, (३) दूध, (४) पूत वाला होवे, (५) तेरी चढ़ी कमान (कीर्ति) जग में रहे, (६) तेरी लाखों पर लेखनी रहे या तेरे प्रवाह जारी रहें, (७) ब्रह्मवर्चस् अर्थात् तेरी भक्ति बढ़े।

पहिली छः तो सब माताएं अपने बच्चों को देती हैं, सातवां आशीर्वाद कोई विरली माता देती है, वेद भगवान् ने कहा :—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां। पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्म लोकम्॥

—: ❋ :—

ओ३म्

अब मेरी मां—उत्तरार्द्ध

मुझे तो मेरी प्यारी मां ने सातवीं आशीर्वाद भी दी। "भक्ति कायम होवी" १९२३ की घटना है। मैं प्रातः अपने भंजन अभ्यास में अपने छोटे से उपासनालय में बैठा था, किसी एक प्रश्न का समाधान न हो रहा था, मैं आग्रह करके बैठ गया कि जब तक इस प्रश्न का प्रभु सविता देव अपनी अन्तः प्रेरणा से सुझाव न देंगे तब तक न उठूंगा। कुछ समय बीतने पर अन्त में एक आवाज सुनाई दी कि जाओ ! अपनी माता के चरणों में नमस्कार करो !

इससे पूर्व जब कभी मैं परदेश में किसी कार्य पर जाता था तो माता के चरणों को हाथ से स्पर्श कर जाया करता था और जब वापस लौटता तब भी ऐसा ही करता। तब माता जी मुझे आशीर्वाद देती थीं, बड़ी आयु वाला होवे, 'नोहरीं पोत्रों वाला होवे' अर्थात् बहुओं और पोतों

वाला होवे। अब मैं जब ऊपर के उपासनालय से उठकर नीचे गया, माता जी चक्की पीस रही थीं। एक लात दाहनी चक्की की मात्रा के साथ फैली हुई थी। मैंने जाते ही अपना माथा मां के चरणों में टेक दिया। तत्काल मेरी मां के मुखारविन्द से निकला "भक्ति कायम होवी, भक्ति कायम होवी" (अर्थात् तेरी भक्ति बनी रहे) और चक्की को बन्द करके मेरे सिर और पृष्ठ पर भी हाथ फेरा। तब से मैं प्रातः और रात्रि को सोते समय माता जी के चरणों में नमस्कार माथा टेक कर करने लगा और उसकी आशीर्वाद भी अब निरन्तर यही मिलने लगी "भक्ति कायम होवी।"

अहा ! नानी का आशीर्वाद–सोने पर सुहागा !

मेरी नानी जी भी पहले जो व्यावहारिक आशीर्वाद दिया करती थी, अब १९३६ में जब टोबा टेकसिंह की कुटिया "भक्ति साधन आश्रम के यज्ञों में यज्ञ, सत्सङ्ग, व्रत, साधनाओं को देखने लगीं, तब उनके मुख से अनायास यही आशीर्वाद निकली, "कुटिया दा फकीर राजी होवी, कुटिया दा फकीर राजी होवी" अर्थात् सद् गुरुदेव तुम पर प्रसन्न रहें।

१९२३ से मुझे माताओं की आशीर्वाद इस आध्या-

त्मिक मार्ग में मेरी उत्तरोत्तर उन्नति कराती गई। माताएं तो सब मनुष्यों की माता रूप होती ही हैं परन्तु मैं अपनी माता को अपना गुरु समझता रहा और समझता रहता हूँ।

यहां पर एक बात अति वर्णनीय है जिससे मुझे बड़ी शिक्षा मिली। जिस दिन मुझे माता जी ने भक्ति का आशीर्वाद दिया, दूसरे दिन जब मैं भजन आदि से निवृत्त हुआ, नीचे गया, माता जी उपस्थित न थीं, वे स्नान करने और गोशाला में गुरु ग्रन्थ साहिब के दरबार का सत्सङ्ग सुनने गई हुई थीं। मैं घर से बाहर स्नान के लिये चला तो मार्ग में मेरी मां अन्य देवियों के साथ आ रही थीं। मुझे लज्जा आई कि कैसे माथा टेकूं ? मैं अन्य मार्ग से मुख मोड़ कर चला गया और जब दोपहर को भोजन करने आया तब यह जान कर कि प्रातः का समय चूक गया, अब भी नमस्कार न की। सायंकाल जब मैं भजन में बैठा तो थोड़ी देर में ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरे मुख पर किसी ने जोर से थप्पड़ लगाकर कहा कि मूर्ख ! तुझे अभिमान हो गया। मां को अन्य देवियों के साथ देख कर मुंह फेर लिया, नमस्कार नहीं की. लज्जा आई। "यह लज्जा नहीं, तुम्हारा अभिमान है पूज्य तो सदा पूज्य सर्वत्र पूज्य होता है।"

मैं दूसरे दिन प्रातः जान बूझकर भजन से देर से उठा कि मार्ग में मां के दर्शन करूं। जब मैं गया तो उसी मार्ग से मेरी मां एक वृद्धा माता के साथ आ रही है। मैंने झट जाकर अपनी मां के चरणों में घुटने टेक माथा टेका, नमस्कार की। मां ने आशीर्वाद 'भक्ति कायम होवी' की दी। वह वृद्धा माता एक नई बात देख चकित रह गई और उसके नेत्रों से अश्रु बह गए और मेरी मां से कहने लगी, "टेके दी मां! तेरा पुत्र नगर में कितने मान शान वाला गिना जाता है और इतना बड़ा आदमी होकर तुझे माथा टेकता है!" मैं तो चल दिया परन्तु उस वृद्धा माता ने तो अपने गली मुहल्ला में जहां जाती, बैठती यही चर्चा करती कि देखो! इस कलियुग में भी कैसे-कैसे पुत्र हैं! मुझे याद है कि मैं जब किसी गली मुहल्ला से अपने किसी कार्य के लिए गुजरता तो वृद्धा माताएं नई बहुओं को एक दूसरे को मेरी ओर संकेत कर कहतीं देखो नीं! अमुक की मां! यही टेके की मां का पुत्र है इसी को महाशय जी, महाशय जी कहते हैं। शास्त्रकारों ने ठीक कहा है :—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥ मनु०॥

जो लोग नित्यप्रति पूर्वजों, वयोवृद्धों का अभिवादन

करते हैं उनकी चार चीजें आयु विद्या, यश और बल बढ़ती हैं।

कई बार मेरी माता ने स्वप्नों में मेरा पथ-प्रदर्शन किया।

१९२२-२३ में जब जब मैं घर पर होता, रात्रि के तीन बजे मेरे उठने जागने की आवाज जब मेरी मां न सुनती तो भीतर से अपने कमरे से जोर से आवाज देती टेका ! टे···का···क्या अभी उठा नहीं ? भजन का समय तो हो गया है। मैं प्रायः उठा हुआ होता था, परन्तु मेरे खांसने, उठने और थूक श्लेष्म के डालने की ध्वनि न सुनने से मां को शङ्का हो जाती कि स्यात् टेका अभी सोया हुआ है। मेरे भजन समय का कितना बड़ा ध्यान रखती थी।

भोजन कैसे बनाती ?

मेरे लिये मेरे गुरुदेव की आज्ञानुसार मेरे अभ्यास-काल में गायत्री जाप में आटा पीसती, गूंथती, पकाती, व्यंजन बनाती, तोल कर ही गूंथती। कभी कभी मां ममता से, मेरा बच्चा इतने अन्न से भूखा न रहता हो अथवा कभी मेरी परीक्षा के लिये एक-दो तोला आटा ज्यादा गूंथ देती। फुलके तो गिनती के उतने ही बनाती परन्तु खाते समय जब मेरा कोटा उदर का पूरा हो जाता

और चप्पा (एक चौथाई) रोटी का बच जाता तो मैं कहता, मां ! आज आटा अधिक गूंथ लिया तो मां भीतर से तो प्रसन्न होती परन्तु कह देती तुम्हें ही भूख कम लगी होगी अथवा सब्जी अच्छी न बनी होगी। कुछ काल बाद मुझ पर विश्वास होने से अथवा मेरे संयम का विश्वास हो जाने पर परीक्षा छोड़ दी।

धारणा

मेरी माता तथा नानी ने हमारे पालने के लिये कठोर तपस्याएं, परिश्रम तथा यातनाएं सहीं। समय-समय स्वयं तो भूखी रहीं परन्तु हम बालकों को ज्ञान तक न होने दिया और यह उनकी धारणा थी कि भूखी रहेंगी, जल पीकर भगवान् का धन्यवाद कर देंगी परन्तु एक दमड़ी भी ऋण नहीं उठाएंगी ताकि कहीं ऐसा न हो कि हम मर जावें और ऋण इन अनाथ बच्चों पर रह जावे।

ताड़ना

एक बार शैशवकाल में अभी मेरी आयु ४-५ अथवा ६ वर्ष की होगी! मैं और मेरा छोटा भाई मां के साथ ही दांए बांए सोते थे। प्रातःकाल मेरी इन्द्रिय में मेरी मां ने उत्तेजना देखी और कड़वी आंख करके मुझे धमकाया और उठकर द्वार को बाहर से बन्द कर दिया और मुझे बन्दी

बना दिया। मैं चिल्लाया, मां ने अति कठोर बनकर जब मुझे अति व्याकुल पाया तो द्वार खोला और कहा कि नाक से लकीरें निकालो। मुझे आज की तरह वह दिन बचपन का प्रत्यक्ष होता है। बड़ा होने पर मेरी आंख सदा इतनी नीचे रहा करती कि मैं अपनी गली मुहल्ला की देवियों को नहीं पहिचानता था ! मेरी दृष्टि ही कहीं पर न पड़ती सदा नीचे रहती।

मेरी मां नानी बड़ी दयालु थीं परन्तु हमको शिक्षा रीति से देती थीं कि मुझे स्मरण नहीं पड़ता कि मैंने कभी सुन्धड़े (चपातियों का पात्र) से चपाती अपने लिये आप निकाली हो अथवा किसी खाने की वस्तु को आप उठा लिया हो। दयालु इतनी कि अपना पेट काट कर हमारे लिये छिपा सुरक्षित रखतीं और शिक्षा ऐसे प्रेम से देतीं कि हम उच्छृङ्खल होकर किसी वस्तु का दुरुपयोग न कर पाते। गली अथवा मार्ग में पड़ी हुई वस्तु को हमें स्पर्श न करने देतीं। एक बार खेलते खेलते गली से अथवा कहीं से लोहे का टुकड़ा व्यर्थ पड़ा मैंने उठा लिया। घर आया मां ने देखा, कहा कि यह कहां से लाये हो ! मैंने कहा गली में पड़ा था तो समझाया कि वहां ही जाकर फैंक आओ। लोहा किसी का नहीं उठाना चाहिये। लोहा

शिक्षा

काला होता है, यह मुंह काला कर देता है।

पतन कैसे होता है ?

गिरी हुई वस्तु को उठा लेना मनुष्य का पतन कर देता है। उस समय तो इतनी समझ नहीं थी, परन्तु आज्ञा पालन करने की प्रभु ने शैशव काल से ही दात प्रदान की हुई थी। आज कुछ 'गिरे' शब्द का रहस्य प्रतीत होता है। मनुष्य का पतन कैसे होता है तभी तो शास्त्रकारों ने कहा :--

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ॥

पालने की युक्ति

बच्चों को निर्धनता तथा धनवान् होने का क्या ज्ञान। मां को तो अपनी दरिद्रता का भी ज्ञान था और अमीरी का भी भान था। धनी हृदय पति की स्त्री थी जो शरद् ऋतु में प्रतिदिन पुरानी खांसी के कारण मालपुवे बनवा कर खाता और बच्चों को खिलाता था। घर में गौ, भैंस का दुग्ध, घृत, माखन पुष्कल मात्रा में प्रभुकृपा से वर्त्तमान था। जब निर्धनता का समय आया, हम अनाथ हो गये। मां विधवा बन गई तो सरदी के दिनों में हमें बिठा कर कहती 'आज मैं तुम्हें बड़े-बड़े मालपुवे बनाकर खिलाऊंगी जो चपाती के बराबर होंगे। खूब तृप्त होकर खाना। वह

गुड़ के चीले बनाकर हमें खिलाती, हम बड़े प्रसन्न होते।

कभी दिन की सब्जी नहीं बची और ४ बजे सायं मध्याह्न पश्चात् हमने रोटी मांगी तो कहती 'आज तुमको नई वस्तु से रोटी खिलाऊंगी। कटोरी में जल डालकर लवण मिरच घोल देती और कहती इससे बोड़ बोड़=लगा लगाकर खाओ, बड़ा स्वाद आता है कभी रोटी को घृत से चुपड़ कर लवण मिरच लगा कर दोहरा कर देती और कहती चके चके=(दांतों से तोड़-तोड़) खाओ। भगवान् ने मुझे बड़ा सरल स्वभाव और भोली भाली बुद्धि का बनाया था और मुझे बड़ा स्वाद प्रतीत होता। अब तक भी याद रखता हूँ, मां की सादा जीवन बनाने वाली युक्तियों को।

मितव्ययिता

भगवान् ने जहां निर्धनता दी थी वहां मेरी मां को मितव्ययिता और प्रज्ञा भी प्रदान की थी। पड़ोसिन ब्राह्मणी के शहर में बहुत यजमान थे और उसके अपने खाने वाले न थे, उस युग में गौ ब्राह्मण के लिये माताएं हंदे (चपातियां जो दान में दी जाएं) बड़ी श्रद्धा से अच्छे बनाकर रखती थीं। सर्व प्रथम गौ ब्राह्मण के लिये बनातीं और तत्पश्चात् अपने बच्चों या घर वालों को बनाकर परोसतीं। उसके पास बहुत से हंदे हो जाते। बाहर के परदेशी श्रमी काम करने वाले भी उन ब्राह्मणों

से रोटियां दो पैसे प्रति सेर के भाव से तोल कर ले जाते और अपना निर्वाह करते थे। शहर में कोई पाचक अथवा सराय न थी। धर्मशालाएं जहां गुरु ग्रन्थ साहिब रखा जाता था, होती थीं। यात्री वहां आकर ठहरते और रोटियां ब्राह्मणों से मोल लेकर निर्वाह करते थे। मेरी मां भी अपना समय और पैसा बचाने के लिये बच्चों के घर में आने से पूर्व दो पैसे के सेर भर फुलके लेकर अपना सुन्धड़ा भर रखती। लकड़ी, घी और समय सब बच जाते और सब्जी एक अंगीठी पर पकाती जिसमें कोयला और उपले डाल कर अपने काम में लग जाती। सब्जी तैयार होने तक आप छापाकल्ली का करती रहती। यह दुपट्टे नव विवाहित देवियों के लिये बनाये जाते थे, सर्व-साधारण के लिए नहीं।

यह उद्योग सब देवियां नहीं कर सकती थीं, कोई कोई इससे परिचित थीं।

चक्की पीसने की मजदूरी एक टोपा=पांच सेर गेहूँ दानों की केवल दो पैसे मिलती थी। और रात्रि के तीन बजे से प्रातः छः बजे तक पीसते रहने पर दो पैसे का काम होता था। एक दुपट्टा छापे की मजदूरी चार आने थी जो बहुत पर्याप्त समझी जाती थी। सरदी के दिनों में मेरी मां आधी रात तक बराबर छापती रहती थी। शायद

एक दुपट्टा दो दिन में पूरा होता था।

मेरी नानी भी चक्की पीस कर दो पैसे कमाती थी चक्की पीसने के बाद मेरी नानी गौओं के बाड़े से जहां शहर की गौएं चरने जाने के लिये एक ग्वाले के पास जमा होती थीं, उस बाड़े से अन्य गरीब तथा अमीर देवियां गोबर इकट्ठा करके ले जातीं और घर में उपले बनाती थीं, उपले इकट्ठा कर लातीं, यदि वहां से गोबर कम प्राप्त होता तो वह राज मार्ग पर गौवों के गुजरने के स्थान पर से मार्ग में जो गोबर गौवें करतीं, वह जमा कर लातीं और अवकाश मिलने पर दोनों पुत्री और माता थाप लेतीं, इससे लकड़ी मोल न लेनी पड़ती। फिर मेरी नानी अपनी बहिन के घर से जो जमींदार थे, लस्सी हमारे पीने के लिये ले आती।

शरद् ऋतु में वह सायंकाल तक कपास का बेलना बेलती, इस प्रकार कुछ मजदूरी मिल जाती।

कई वर्षों के बाद मुसलमान छापागर पंजाब से आए और वह ठप्पा (सांचा) से कई प्रकार के नमूने कपड़ों पर छापने लगे। लोगों की, स्त्रियों की रुचि नवीन वस्तु में होगई और वह कल्ली का छापा बन्द होगया। तब शरद् ऋतु में मेरी माता और नानी दोनों इकट्ठी बेलना मज़दूरी पर बेलतीं। मेरी एक बड़ी बहिन थी और एक

छोटा भाई। बाजार में पैसा खर्च करने और पकोड़े लेने का मन सब बच्चों का चाहता है, हम भी मां अथवा नानी से पैसा मांगते और वे बेचारी इतनी मितव्ययिता और बुद्धिमत्ता से परिश्रम करके निर्वाह चलातीं। हम बच्चों को न दें तो भी उनको करुणा आए और देवें तो प्रतिदिन कैसे देवें, कहां से देवे! उन दिनों एक चौथाई पैसा (अर्थात एक कसीरे के बड़े बड़े चार पकोड़े मिल जाते थे तो मुझे एक कसीरा देतीं एक कसीरा १६ कौड़ियों का होता था), मैं ४ पकोड़े ले आता तो मां कहती एक२ बांट लो। बच्चे भला एक पकोड़े पर कैसे सन्तुष्ट हों तो मां बड़े प्रेम से खाना सिखाती कि मध्याह्न पश्चात् एक फुलका एक पकोड़े से कैसे खाया जाता है। सबसे उत्तम बात यह रही कि भगवान की दया का मङ्गल और भाग्य पूर्ण हाथ मेरी मां और नानी के सिर पर था। वह जब भी हमें समझातीं, बड़े प्यार से, युक्ति से और स्वयं आचरण करके देखा देती। भावना उनकी सन्तान पालने के लिये बहुत पवित्र और विचार धार्मिक थे। उनके आशीर्वाद से हम बच्चों को भी सन्तोष बना रहता, नहीं तो वे बालक जिन पर मत ।की छत्र छाया नहीं रहती, अनाथ हो जाते हैं, वे माता की आज्ञा नहीं मानते और माताओं को दुःखी करते हैं। माताएं बेचारी पुत्रों की

बातों को सदा सहन करके अपना समय बितातीं, उनको पाल पोस बड़ा कर देती हैं।

तरटी चौड़ पुत्र

मेरी बहिन की और मेरी सगाई भी हो गई। अब मां नानी को चिन्ता पड़गई कि लेन देन की लोक मर्यादा भी बढ़ जावेगी। विवाह भी एक दिन होना है। हम विधवाएं क्या कमा के जमा करलेंगी। तो एक दिन माता ने मुझे कहा अब गरमी की ऋतु है। लोग दुकानदार दोपहर को सो जाते हैं और उठने(जागने) पर वे जल पिया करते हैं तुमको मैं चने का खोंचा बना दिया करूं। तुम पाठशाला से जब आते हो, भोजन खाकर थोड़ा विश्राम कर लिया करो और मैं रात्रि को चने भिगो दिया करूंगी और मध्यान्ह पश्चात् चने चढ़ाकर तुम्हें खोंचा बना दूं, तुम बाज़ार में जाकर बेच आया करो। एक घंटा लगेगा। आना दोआने प्रति दिन कमा लिया करोगे फिर तुम बहिन भाई अपनी इच्छानुकूल जो वस्तु चाहो बाजार से सुगमता से ले सकोगे। मैं खुश हो गया।

मां ने तकड़ी व तराज़ू बनाया। पलड़े खजूर के पत्तों के बुन कर बना दिये क्योंकि, बाज़ार से तुलावड़े मोल लेने तो शक्ति न थी और बट्टे भी तोल के ईंट के बना दिये क्योंकि बनाने तो छटांक आध पाव के थे और फिर

मुझे सिखा दिया कि देखो तराजू की नाभि में जब ये दोनों पलड़े बराबर हो तो एक में चने और दूसरे में बट्टा हो तब यह तोल पूरा समझा जाता है। मैंने खोंचे का श्रीगणेश किया। बाज़ार में गया। लोग नींद से जाग रहे थे। मुझे होका (घोषणा) देने की विधि तो आती न थी परन्तु जब दुकानदारों ने देखा कि खोंचा उठाए हुए है तो मुझे बुलाया तो किसी ने कहा, एक कसीरे के दो, किसी ने कहा एक अधेले के दो तो पहिले ही दिन बाज़ार वाले कुआं के पास जो दुकानदार थे, एक ही दुकान पर एकत्र होकर लेने लगे। मैंने तक्कड़ी उठाई और वे लोग अपनी इच्छा से अपने हाथ से चने उठा पलड़े में डालने लगे। उन्होंने बहुत उठाए और पलड़ा भारी हो गया, नीचे चला गया और मुझे इसे पूरा करने के लिए समझ न आई तो उनमें से एक दुकानदार ने कहा अंगुली चने वाले पलड़े के लिये तराजू की नाभि के पास रखो! अब मैंने ऐसा किया तो बट्टा वाला पलड़ा भारी हो गया, कहा देखो और चने डालो तो मैं चने डालता गया और अंगुली को जोर से दबाकर बट्टे वाला पलड़ा भारी होता गया। वे सब हंसने लगे और अन्ततः एकने कहा बाबा! गरीब अनाथ लड़का है, चलो, तुम कम ही लेलो, पलड़ा इससे पूरा नहीं होता। तो उस दिन सब ने ऐसे मुझसे

ले लिये और मैं तुरन्त थोड़ी देर में ही निवृत्त होकर प्रसन्न होता घर आ गया। मां को पैसे दिये तो माता चकित हो गई और कहा कि तुम तो बहुत घाटाकर आए पहिले ही दिन परन्तु वह मेरे भोले भाले स्वभाव पर दया से ही बोलती रहीं। मूल भी असल भी वसूल न हुआ। दूसरे दिन गया तो भी उसी दुकानदार ने बुलाया फिर सब जमा हो गए तब भी वही हाल किया। मां को जब जाकर पैसे दिये तो मां पुनः चकित! कई दिन तक यही अवस्था रही। मां सोचने लगी, "तरटीं चौड़ कबीर दी जाया पुत्र कमाल"---यह तरटीं चौड़ पुत्र टेका इतना भोला भाला साधु स्वभाव है। कैसे कमायेगा, कैसे अपनी और परिवार की पालना करेगा।

मुझे पूछा कैसे तोलता है? मैंने तोल कर दिखाया, तो कहा, हाय! हाय! तुझे तो तोलने की जांच भी नहीं, तुम तो कहते हो कि वह अनाथ जानकर दया करते हैं और कहते अच्छा तुम से तुलाबड़ा पूरा नहीं हो सकता तो हम ही कम ले लेते हैं। ये तो अत्याचारी एक अनजान अनाथ बालक से ही छल कपट करके लूटते हैं। कितने दिन हो गये। मैं विधवा निर्धन कितना पुरुषार्थ करती हूँ, अपना पेट काट कर चने मोल लिये और वे

सरल स्वभाव को लूटने का फल

मेरे परिश्रम पर भी डाका मारते हैं। मेरी मां रो पड़ी और मैं भी रोने लग पड़ा। अब माता बेचारी को मुझे चुप कराना पड़ गया और मुझे कहा कि अब उनके पास बेचने न जाना और मुझे चने चढ़ाकर तकड़ी में डालकर पूरा तोल करना सिखा दिया कि अंगुली न इधर रखो न उधर, वह तो अलग रहनी चाहिये हे भगवान्! मेरे अनाथ भोले भाले बच्चे को बुद्धि दो! मैं अपना पेट काटती हूँ, छोटे कोमल बच्चे को धूप में गरमी में खोंचा सिर पर उठआती हूँ। लोगों के बच्चे इस समय आराम करते सो रहे होते हैं और इस बेचारे से श्रम कराती हूँ। अभी फिर यह पाठशाला में पढ़ने जावेगा, प्रभो! मेरी लाज रखो! और फिर रो पड़ी। रोना उसका बन्द ही न हो। मुझसे नाम पूछा, कौन ऐसा करते हैं। मैंने कहा, मुझे तो नाम किसी का नहीं आता। बाजार वाले कूप के साथ बैठते हैं। मां ने कभी घर से बाहर बाजार का क्या? दूसरी किसी गली का मुंह न देखा था।

भगवान् की लीला

यह घटना सन् १८६५ ई० की है परन्तु सत्य कहा है—

गरीब को मत सता जालिम गरीब रो देगा।
सुनेगा उसका मालिक तो जड़ से खो देगा॥

१६१८ में ठीक वही घटना उन व्यक्तियों की मेरी आंखों के सामने घटी। बड़ी मान प्रतिष्ठा, सम्पत्तिशाली थे, १६१८ में उनकी ऐसी दशा हो गई कि दिवाला निकालना पड़ा, मकान दुकान नीलाम हो गए। जन्मभूमि का परित्याग कर रियासत को भाग गए। जाकर वहां मजदूरी की और परिवार परेशान होगया। व्यापार की जिन्स मुझे भी अदा न कर सके। मेरे पास आभूषण लाये। मैंने कहा किसी और स्थान पर कार्य करो मुझे (मेरी फर्म को) फिर दे देना। मुझे जब वह दृश्य स्मरण हो आता है तो मैं कहता हूँ प्रभो! ऐसे पाप अनर्थ से सब मनुष्यों को बचाओ।

फिर मैं प्रति दिन एक आना, दो आना, तीन आना तक कमा लाता। ज्यों ज्यों मैं बड़ा होता गया, चने का खोंचा मां बढ़ाती गई और रविवार अवकाश होता था। प्रातः और मध्यान्ह पश्चात् दो बार खोंचा तय्यार कर देती।

माता की उदारता गम्भीरता

मैं प्राइमरी पास करके जब अंग्रेजी मिडिल स्कूल अली पुर में जूनियर स्पेशल में प्रविष्ट हुआ तो हर शनिवार रात्री को घर आता, रविवार प्रातः मेरी माता मुझे वही खोंचा बना देती और मध्याह्न पश्चात् भी।

में १० वर्ष का बालक था। पैदल १० मील चलकर आता, रात्रि को माता मेरी पिण्डलियों की तेल से खूब मालिश करती और कहती कि तू थका हुआ आया है। चने नहीं भिगोती, परन्तु मैं कहता, नहीं मां! मैं प्रति शनिवार आता ही इसीलिये हूँ। छः मास निरन्तर ऐसा करता रहा।

आर्य समाज की लाग, खण्डन मण्डन

अलीपुर में नई नई आर्यसमाज का प्रचार करने पण्डित लोग आए। उन दिनों खण्डन का ज़ोर था। मूर्ति पूजा, श्राद्ध पर व्याख्यान होते। हम लड़के भी सुनने जाते और आर्य समाजी विचार के बन गये और तो कुछ लिखे पढ़े हम थे नहीं परन्तु पण्डितों की युक्तियां और उपदेश सुनकर जोश भर जाता और मैं जब घर जाता तो मैं भी प्रातः कूप पर,जहां लोग स्नान करने, हस्त मुख प्रक्षालन के लिए उपस्थित होते, यही प्रचार करने लग जाता। लोगों को उस समय खण्डन बहुत भाता था और जान बूझ कर अच्छे अच्छे लिखे पढ़े व्यक्ति शहर के प्रतिष्ठित जन जब मैं बाज़ार से गुज़रता तो अपनी दुकान पर बुला और छोड़ देते। मैं भी खण्डन शुरु कर देता। लोग एकत्र हो जाते इससे समस्त बाज़ार में कई स्थानों पर मुझे वे प्रतिष्ठित सज्जन बुलाकर आदर

से बिठाते और हुक्का, भी भर देते, सत्कार करते और अपने मनोरंजन के लिये मेरी बातें बड़े प्रेम से सुनते। इससे मेरे अन्दर अपने मान का भाव पैदा होगया कि लोग मेरा इतना मान करते हैं (चाहे थी वह उनकी दिल्लगी, शुगुल की बात परन्तु मैं तो यह रहस्य न जानता था)

तो मैंने मां से कहा अब मुझे खोंचा उठा कर बेचने में लज्जा आती है, मेरी माता कई सप्ताह से यह चर्चा मेरी सुनती रहती थी कि लोग इसे अपने पास मान से बिठाते बुलाते हैं, वह समझ गई तो कहने लगी--वत्स! मैं तो तुम्हें पहिले दिन से खोंचा न उठवाना चाहती थी कि एक तो तुम अङ्गरेज़ी पढ़ते हो और दूसरे थके हुए आते हो और लोकोक्ति सुनादी--

फ़ारसी पढ़े बेचिन तेल--यह देखो कर्मों के खेल।
अङ्गरेज़ी पढ़ा बेचे आटा--देखो यह है कर्मों का घाटा॥

फ़ारसी अङ्गरेज़ी पढ़े तो बड़े भाग्यवान् होते हैं जो सरकारी नौकर बन जाते हैं। दुकानदारी तो अपठितों का काम है जो भाग्य हीन पढ़ते नहीं।

दूसरी उदारता और सरलता बड़ी सराहनीय है कि टोबा टेकसिहं कुटिया पर जब यज्ञ होते थे तो व्रतियों से यम-नियम का पालन बड़ी कड़ाई से कराया जाता था। कोई व्रती किसी अन्य व्रती अथवा दर्शक की वस्तु बिना

आज्ञा लिये प्रयोग नहीं करता था। तौलिया, बाल्टी, गड़वी, लोटा, आदि जो सर्वसाधारण बिना पूछे एक दूसरे का उठाकर प्रयोग करलेते हैं, सब व्रती सावधान रहते। यदि कोई ग़लती से अथवा प्रमाद से कर बैठता तो क्षमा भी मांगता और प्रायश्चित्त भी करता। सब व्रती और दर्शक सत्सङ्गी लंगर में ही भोजन करते थे।

मेरी माता अपने पृथक् कमरे में मेरी नानी, बहू और गणपति के लिये अपना भोजन बनाती थी। गण-पति यद्यपि वेद पाठ करता था परन्तु माता उसे आश्रम के लंगर से भोजन न करने देती थी मुझे भी अपने पास से खिलाती थी।

एक दिन दोपहर को मैं भोजन करने गया तो मां ने एक मूली के पत्ते मुझे भोजन के साथ दिये। मैंने पूछा, अम्मां! यह मूली कहां से मंगाई? तो कहा तुम्हारी अपनी कुटिया की है। मैंने कुछ पत्ते तोड़ लिये हैं। मैंने कहा अम्मा जी! कुटिया तो मेरी जरूर है खेती भी, परन्तु इस समय तो मेरा एक का अधिकार नहीं है। यह सब कुछ बीजा हुआ सब लंगर के लिए है जिसे सब खाएं। मैं कैसे खाऊं। आपने तो बिना पूछे माली के तोड़ लिये हैं, अब सब कुछ माली के आधीन है, मैं तो नहीं खाऊंगा। नियम तो यही है जो ऐसा करे वह प्रायश्चित्त भी करे और सबके

समक्ष क्षमा याचना भी करे। मेरा सब के लिए यही नियम रखाया हुआ है। आप मेरी माता हो, मैं क्या कहूँ ? तो माता ने बड़े हर्ष से और उदारता से कहा कि मैं तुम्हारे धर्मव्रत की रक्षा करनेवाली मां हूँ भंग करने वाली नहीं। तुम पर अंगुली क्यों कोई खड़ी करे। पत्ते आप भी न खाए और न किसी को दिये। वही पत्ते सायं के समय यज्ञ के समय लाकर सब के सामने करके क्षमा याचना की और प्रायश्चित्त गायत्री जप से किया। मां की इस क्रिया का व्रतियों और दर्शकों पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

मेरे खोंचा उठाने से मां नानी बड़े सन्तुष्ट रहते। निर्वाह अच्छा चल जाता और कुछ न कुछ जमा भी हो जाता। कई वर्षों तक यह खोंचा मैं बेचता रहा।

एक और घटना

एक और घटना मेरी आंखों के सामने सदा रहती है। मेरी नानी के मुहल्ला में दो घर ऐसे थे जिनमें वयो-वृद्ध पुरुष रहते थे, उनके सन्तान न थी। बाहर मारवाड़ जैसलमेर से कई लोग आये, लड़कियां उनके साथ होती थीं और वे नगर नगर में बेच जाते थे। उन दोनों ने विवाह किया। देवियां बहुत रूपवती थीं, धनियों के घर आईं। अब वे काम क्यों करें। वे सब कार्य पैसे देकर

करा लेतीं और आप खटोलीं पर बैठी रहतीं। मेरी नानी के घर के पास ही वे घर थे तो जब कभी दीवालों पर लिपाई पुताई करानी होती, वस्त्र धुलवाने होते तो मेरी नानी से मजदूरी कराते और जो कुछ उनसे प्राप्त होता नानी ले लेती। हमारी उदर पूर्ति के लिए उस बेचारी को श्रम करना पड़ता, वह स्वयं तो एक ही जीव थी, दो पैसे में उसका निर्वाह हो सकता था।

ऐसी बिकी हुई स्त्रियों का स्वभाव भी अपने ही ढंग का होता है। कभी बुरा भला भी कह देती होंगी, नानी सह लेती होगी। उन दोनों को मैंने अपनी आंखों देखा। उनके पति स्वर्गवासी हो गये। सन्तान हुई परन्तु तब छोटी छोटी थी। दोनों की सन्तान अयोग्य निकली। जुआरी, निकम्मे, प्रमादी, कमचोर, आलसी बने। एक कवि ने कहा है:—

माता शत्रुः पिता वैरी याभ्यां बालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये बको यथा॥

दोनों की सन्तान अनपढ़ थी। खाते खाते तो महा-कोष भी खाली हो जाते हैं। खर्च होता गया अवस्था यहां तक आ पहुंची कि उन दोनों देवियों को निकम्मी, मखट्टू सन्तान के कारण श्रमतप करके उदर पूर्ति करनी पड़ी।

उन माताओं को मैंने अपनी आंखों देखा कि वे मेरी नानी के घरों में उसी प्रकार कीच से वस्त्र लथपथ मां नानी की दीवालों की लिपाई पुताई कर रही हैं और मेरी मां नानी वस्त्र तो किसी से न धुलवाती न चक्की किसी से पिसवाती। चक्की तो वह तब तक अपनी अपने घर की १९३६ तक आप पीसती रहीं। १८९२ से १९०४ तक तेरह वर्ष बराबर दोनों अपने तप श्रम से हमारी पालना करती रहीं। १९०५ में जब मेरी नौकरी हो गई तो उनसे पराई मेहनत कराना बन्द करा दिया और १९०५ में मेरी नानी ने अपने दो मकान, दो दुकान मेरे नाम हिब्बा करा कर रजिस्ट्री करा दिये और हमारे साथ रहने लग गई।

नानी की उदारता

मेरी नानी अशक्त होते हुए भी उदार थी। अपनी सामर्थ्यानुसार पेट काट कर भी दान करती। पुरातन रीति रिवाज और मर्यादाओं को बहुत पालन करती यहां तक कि जब मकान दुकान मेरे नाम रजिस्ट्री कर दीं, तब सब तीर्थ परस आई और अपनी मृत्यु के बाद की नेची बिलाद्र भी ब्राह्मणों को पहुंचा दिया। चान्द्रायण व्रत भी एक छुआरा दैनिक पर किया यह समझ कर कि मेरा दोहता आर्य समाजी है, मेरा कुछ न करेगा इसलिये मैं

स्वयं ही कर जाऊं। अपनी ९०-९५ वर्ष की आयु तक (आयु का अनुमान उसने १९०५ की रजिस्ट्री हिब्बा में अपनी ६० वर्ष की आयु लिखवाई थी, उससे लगाया गया) एकादशी का व्रत अवश्य रखती। इतनी वृद्धावस्था में सिर से दुपट्टा उतार कर कभी नहीं बैठती थी। कोई आ जावे तो सिर का वस्त्र और नीचे कर देती, चूंकि घूंघट का रिवाज था वही स्वाभाविक अभ्यास बना रहा।

जब टोबा टेकसिंह दो मास यज्ञ में आती, कितने पोतों समान साधक व्रती आते वे चरण दबाना चाहते—हाथ न लगाने देती। (ऐसी सती साध्वी देवी के आगे मस्तिष्क झुक जाता है—सम्पादक) मैं भी प्रतिदिन माता नानी को दबा कर और नानी के सिर में तेल डालने के पश्चात् सोता। मेरी माता को गणपति अथवा रामदेवी उसकी धर्मपत्नी—मेरी बहू उसके सिर में तेल डालतें। मुझसे पिण्डली तो दबवाती परन्तु और शरीर न दबवाती।

मेरी नानी को रात्रि को बुढ़ापे के कारण मूत्र करने उठना पड़ता तो मैं उसकी खटिया के नीचे एक लोटा रख दिया करता और बहुत सवेरे प्रातः जब नमस्कार करने जाता तो लोटा उठाकर धोकर केले के पेड़ों में रख दिया करता और किसी से वह सेवा लेना स्वीकार न करती। रात्रि को उठ कर मैं दो बार उसके वृद्ध शरीर को दबाने

जाता तो इतना आशीर्वाद देती कि सारा दिन मेरा सफलता से बीतता ।

मेरी माता भी सिवाय मेरे, पोतों अथवा बहुओं के और किसी से सेवा न लेती । बहुत-सी देवियां सेवा करने को जातीं, सबका बड़ा मान करती । स्वयं वृद्धा होती हुई भी उन्हें बड़ा समझती । मेरी मां में दान वृत्ति मेरी नानी के समान न थी परन्तु संघटन का बड़ा ध्यान रखती कि किसी प्रकार घर का संघटन शिथिल न पड़ जाए । मेरी नानी को सेवा करने देने का स्वभाव था । मेरी मां जब अपनी दोहतियों को अथवा पुत्री को कुछ देती तो मेरी नानी भी अपने हाथ से देने को कहती कि मैं भी दूं । जब वह अपने घर रहती था तब तो अपने आप दे आती । जब हमारे घर में रहती थी तब भी अपने स्वभाव वश वह पृथक् देती

पहिले तो परवाह नहीं थी परन्तु जब मेरी अवस्था बहुत हीन पड़ गई तब मेरी मां को अखरने लगा कि एक ही घर है देने की पृथक् पृथक् क्रिया कमजोर करती है ।

घर के व्यय—निर्वाह की जिम्मेदारी तो माता समझती थी । तब माता ने मुझे कहा और मैंने माता से कहा कि नानी का स्वभाव देने का पूरा करो । स्वयं जो वस्तु जहां भी देनी हो, नानी को दे दिया करो कि वह

ही अपने हाथ से दे आया करेगी। उसे भी सन्तोष रहेगा और आप भी इसी पर सन्तोष करो कि मैंने ही तो दिया है। लेने वाली तेरी कन्या है अथवा धेवतियां हैं। वे जानती हैं घर एक है। नानी कोई अपना धन पृथक् तो नहीं रखती। माता को सन्तोष हो गया।

माता का व्यवहार

जब १६०५ में मेरी नौकरी लगी तो मैं वेतन मिलते ही सारे का सारा माता को भेंट कर देता तो मेरी माता बड़ी बुद्धिमत्ता से मेरी धर्मपत्नी को दे देती और जब मैं पैसा मां से मांगता किसी वस्तु के क्रय के लिए तो मां अपनी बहू से कहती कि इतने पैसे ला दो और वह भी लाकर कभी मेरे हाथ में न देती, मां को ही देती और वह मुझे देती। मेरे बच्चों को मां कहती कि खर्च के लिये पैसा चाचा से लिया करो।

जब मैं नौकरी से घर आ गया तो घरेलू सामान के क्रय विक्रय का कार्य मेरे छोटे भाई के हाथ में था। बच्चे चाचा से खुश रहते और चाचा का मान बढ़ता। चाचा बच्चों से प्रसन्न रहता—ऐसा संघटन बना रहता।

वह सनातनी विचार का था। हम एक दूसरे के काम में कभी हस्तक्षेप न करते।

धार्मिक प्रवृत्ति

मां नानी जपजी और रौरास आदि का पाठ करती थीं। मेरी गृहिणी भी उनको देख कर जप करती और मुझसे हवन आदि भी कराती। इसका फल यह हुआ कि मेरी माता और नानी दोनों गायत्री का जाप करने लग पड़ीं। मेरी नानी पुरातन संस्कारों की थीं परन्तु मेरी माता सब बातों में रीति रिवाज की उपेक्षा करके मेरे साथ सहमत हो जाती रही। श्राद्ध मैं नहीं करता था, तो उसने भी व्यर्थ समझ लिया।

१८ वर्ष तक मेरी पत्नी जीवित रही। सासु ने बहू से किसी बात में विरोध नहीं होने दिया। बहू को सदा अपना आज्ञाकारी होने का आशीर्वाद देती रही। केवल एक दिन १८ वर्ष में ऐसा आया जब कि मैं कचहरी से लौट कर घर आया तो मां ने शिकायत की। यह घटना सम्भवतः १९११ की है। तब मैंने जोर से एक थप्पड़ अपनी गृहिणी को लगाया और कहा कि मेरी माता को यदि कोई दुःख तू ने पहुंचाया तो आज याद रखले! मैं नहीं हूँगा, निकल जाऊंगा। मेरी मां का तो एक पुत्र और भी है वह सेवा करेगा परन्तु तू विधवा बन कर रोवेगी। मेरी धर्मपत्नी ने मां से क्षमा मांगी और

पश्चात्ताप किया। उस एक दिन को छोड़ शेष सारी आयु खूब प्रेम से संघटित रहीं।

स्वल्प शुभ कर्म का महान् फल

प्रभु का यह नियम बड़ा ही सुखद है कि वह स्वल्प से शुभ कर्म का महान् फल प्रदान करता है। ऐसे मैं मां नानी की कुछ भी सेवा न कर सका। परन्तु आशीर्वाद पुष्कल पाया। १९४२ में मैं कुटिया टोबा टेकसिंह पर व्रत में था। १७-१८ या १९ दिसम्बर था। मैंने स्वप्न में देखा जतोई अपने घर पर नानी ने मुझे कहा मुझे सत्संग में ले चलो। मैंने कहा नानी ! मुझे तो पता नहीं सत्संग कहां हो रहा है। लाजपत (मेरा लड़का) भी नहीं है विसंदाराम (मेरा भान्जा) भोजन कर रहा है। अच्छा चलो ! मैंने नानी को पीठ पर बिठाया और ले चला। पूर्व की ओर गली थी बाहर गोशाला को जाने की, वहां तक पहुंचा कि निद्रा खुल गई। मैं उस समय कुछ समझ नहीं सका।

दूसरी प्रातः मैं डेराइस्माईलखान यज्ञ कराने चला गया तो वहां पर समाज मन्दिरमें तार पहुंचा कि नानीजी पर-लोक गमन कर गईं। उसके बाद जब मैं घर गया तो माताजी ने कहा कि अब मेरीभी बारी जानेकी आगई है।

दो वर्ष मेरी मियाद है माता के मरने के बाद की। मैंने कहा तुमको क्या इलहाम (प्रेरणा) हुआ है। कहा, नहीं एक ज्योतिषी ने बताया था। नानी की मृत्यु तो ठीक उसीके कहने के अनुसार हुई है। पहिले तो हमें विश्वास नहीं था, अब मुझे अपना भी निश्चय हो गया। तब मैंने एक मन चन्दन की लकड़ी लाहौर से मोल लेकर जतोई घर में रख दी कि पता नहीं कब मृत्यु हो जाए। सामान पहिले उपस्थित रहना चाहिये।

१९४४ में जब कटासराज के व्रत में मुझे एक सहस्र दिन के लिये अदर्शन मौन व्रत की अन्तः प्रेरणा हुई तो मैं अपनी माता से जतोई (पाकिस्तान) घर आज्ञा लेने गया। मां से कहने का साहस न पड़ा। अपने पुत्र गणपति से कहा कि माता जी के कानों तक यह बात पहुंचा दे। माता जी ने आश्चर्य में आकर कहा ह... जा...र दिन! मैं तो आज्ञा नहीं दूंगी क्योंकि मैं उसके एक वर्ष के व्रत के दिनों में (१९३१-३२) जो मैंने किया और रुग्ण हो गया था, माता जी को स्वप्न आते रहे कि टेका बीमार है। मेरे गुरुभाई पूज्य हकीम नन्दलाल जी से जाकर पूछती रही वे सान्त्वना दे देते परन्तु मां को शान्ति न आई अन्ततः ला० नन्दलाल जी को दो बार स्वप्न में मेरे रोग और चिकित्सा के लिये

जाने का आदेश हुआ, के आए और चिकित्सा कर गए वरना मैं मस्तिष्क (बुद्धि) खो बैठता---प्रभु दया !" स्वप्न द्वारा वैद्य भेजा) बहुत व्याकुल हो गई थी······ गणपति ने मुझे उत्तर सुनाया। परन्तु प्रभु अपने कार्य कराने का मार्ग स्वयं साफ करता है।

प्रभु दया ! दूसरे दिन प्रातःकाल मेरे मातृ चरणों में नमस्कार करने जाने से पूर्व ही माता जी मेरे पास देवदत्त जी के मकान पर आ पधारीं। मैंने नमस्कार की पूछा, क्यों कष्ट किया ? तो कहने लगीं मुझे रात्रि को स्वप्न आया, मैंने तुझे आशीर्वाद दिया के तेरा व्रत सफल हो ! इसलिये तुझे अपनी स्वीकृति देने और आशीर्वाद देने आई हूँ। परन्तु एक बात है मेरा अब मृत्यु का समय आ गया है (१) इसी वर्ष मैंने मरना है मैं चाहती हूँ कि भगवान् ! मुझे हलदा चलदा (अर्थात् अदीन होकर) टोरें अर्थात् मेरी मृत्यु शक्ति रहते हो। रोगी आधीन होकर न हो।

(२) एकादशी का दिन हो (३) तीसरा तू मुझे कन्धा दे जब मैं मरूं। तुम व्रत में बैठ गए तो यह इच्छा कैसे पूर्ण होगी। अच्छा ! जो हरि इच्छा ! मैं तुमको आशीर्वाद दे चली हूँ।

माता की भविष्य वाणी

नवम्बर १९४४ में मेरी माता जी ने कहा टेका ! अब तू व्रत में बैठने वाला है पहिले यही प्रार्थना कर कि मैं मर जाऊं। तीन वर्ष का व्रत है न तुझे मेरी चिन्ता रहे न मुझे तेरी चिन्ता रहे। मरना तो है ही। खाट से झुक कर जल लेने लगी और फिर उठ नहीं सकी। उठा कर कमरे में ले आए. कोई पीड़ा नहीं कोई कष्ट नहीं परन्तु अब अपने आप चल नहीं सकती। यज्ञ में भीड़ हो जाने से मैं उसे अपनी पीठ पर उठाकर, एकान्त वाटिका के कमरे में ले गया।

अभी दिन बाकी था तो वो अचेत होने लगी। कहा ओहो ! ओहो ! अच्छा छूट गई, दूसरी पर जाऊंगी। फिर सचेत हो गई। मैंने और जो पास बैठे थे पूछा, मां ! क्या छूट गई तो कहा नाव पर चढ़ने के लिए दौड़ी थी परन्तु नाव भर गई थी और वह छूट गई। थोड़ी देर के बाद फिर श्वास निकलने शुरू हो गए और अन्त हो गया।

प्रभु कृपा ऐसी हुई की मां की तीनों बातें पूरी होगई, भविष्यवाणी सिद्ध हो गई। शनिवार था एकादशी का दिन था। २६ नवम्बर १९४४ थी। टोबा टेकसिंह में माता जी मेरे आश्रम में थीं। एक मास मेरे व्रत में बैठने

से पूर्व परलोक गमन किया। प्रभुदेव का धन्यवाद किया। चन्दन की समिधा से दाह संस्कार किया गया।

एक उत्तम शिक्षा

जब १६३७ में मेरी मां नानी को बहुएं प्राप्त हुईं तब सब गृह कार्य छोड़ कर केवल गायत्री जाप की दिन रात माला ही फेरती थीं। कहा है:—"सब दिन होत न एक समान ! पर एक उत्तम शिक्षा मिलती है कि गृह के सब कार्य अपने हाथ से किए जावें। सन्तान को पुरुषार्थी बनाया जावे। शैशव काल से श्रम का जीवन बिताना सिखाया जावे। धन लक्ष्मी और प्राण दोनों इस जीवन में चले जाने वाले हैं। इस चलाचली के संसार में केवल मात्र धर्म ही स्थिर है। शास्त्रकार कहते हैं :—

चला लक्ष्मीश्चला : प्राणश्चले जीवितमन्दिरे।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चल: ॥

धर्म संस्कार

जब मां नानी रात्रि के समय कथा सुनने जातीं तो हम बच्चों को भी साथ ले जातीं। भाव उनका यह होता था कि यदि बालकों को घर पर अकेला छोड़ जावें तो वे भय खायंगे अथवा हमको जाने नहीं देंगे, हम सत्संग से वंचित रहेंगी और साथ ले जावेंगी तो चाहे वहां सो जावेंगे, कथा के प्रसंग का भी उनको ज्ञान नहीं होगा

परन्तु सत्संग के संस्कार तो पड़ जावेंगे। मार्ग में घर से लेकर कथा भवन तक कई देवालय स्थान आते थे। उस युग में ब्राह्मणों के घर में एक कमरा मूर्ति के लिए रखा होता था। कोई चिन्ह मन्दिर का बाहर न होता था। ब्राह्मण निर्धन होते थे, बहुत लिखे पढ़े भी नहीं होते थे। लोग भी निर्धन थे इसलिये ऐसे ही गुजारा कर लेते थे परन्तु मार्ग में अपने मकान की दीवाल में एक आला बना देते थे जिनमें सायं को जोत रख देते थे। तो मेरी मां नानी उस जोत स्थान पर माथा टेकती और हम से भी टिकवाती जाती थीं और यह कहतीं कि ज्योत है इसे माथा टेकना चाहिये। अब समझ आ रही है कि देव मन्दिर जहां ज्ञान की ज्योति का दीपक जलता है वह स्थान सत्कार सन्मान के योग्य हैं, जनता को मार्ग प्रदर्शित होता है।

अमावस्या के बाद जब चन्द्र उदय होता, प्रति मास पर चन्द्र रात की सायं को हमें कहतीं कि जाओ! अपनी गली मुहल्ला और नानी की गली मुहल्ला की सब माताओं और पुरुषों को चरण स्पर्श करके रामराम कर आओ! जब मैं जाता तो माताएं मेरे चरण स्पर्श करने पर बड़ी उदारता से आशीर्वाद देतीं और हाथ फेरतीं।

जब मैं बच्चों में खेलने जाता तो कभी किसी ने

मुझे पीटा या अपशब्द कहे तो मैं रोता हुआ मां के पास आता। मेरे चाचा यदि विद्यमान होते तो कहते वाह! वाह! वाह? वाह! तुम तो गाड़ी पुत्र हो, गाड़ी पुत्र तो बड़े वीर होते हैं किसी से पीटे नहीं जाते। देखो! हम कैसे वीर शेर जवान हैं! तुम कह दिया करो, सावधान! मैं तो गाड़ी पुत्र हूँ। ऐसे रूं रूं करते मां के पास दौड़ आते हो! जो एक लगावे उसे दो लगाया करो! तकड़े (वीर) बनो! बाद में मुझे मां सिखाती पुत्र! खेलने में ऐसा हुआ करता है कभी तुमने पीटा कभी उसने पीटा परन्तु अपशब्द किसी को न दिया करना। माता बहिन सब की एक जैसी होती हैं, माता बहिन की गाली तुम कभी किसी को न दिया करना। तुम को पीटते हैं तुम से अधिक बलवान् और बड़ी आयुके हैं तो उनसे खेलना छोड़ दो। घर में दोनों भाई खेला करो और समझाया करती जब किसी सहपाठी के घर जाओ, वे कोई चीज खाने लगें अथवा खा रहे हों तो तुरन्त वापस लौट आया करो! किसी को खाता देखकर पास खड़े मत रहना।

हाथ मत पसारो

अपने घर में भी कोई आए तुमको बच्चा जान पैसा अथवा कोई वस्तु दे उसके आगे हाथ मत पसारो। माता नानी की आज्ञा के बिना अपने आप मत लो। हां यदि

तुम्हारे मामा (मेरी मां के मामा) आते हैं उनसे निसंकोच ले लिया करो "परन्तु मांगना कभी नहीं।"

माता की शिक्षा का इतना बड़ा प्रताप था कि जब मैं बहुत अच्छी कमाई वाला भी हो गया और कभी मुझे पिछले पहर भूख लगती और मैं घर जाता, मुहल्ला की देवियां गली में चरखा कात रही होतीं। मैं आंख नीचे किए घर के अन्दर चला जाता। थोड़ी देर प्रतीक्षा करता, जब मेरी माता अथवा मेरी स्त्री में से कोई न आता तो मैं वापस ही चला जाता। परन्तु कोई वस्तु अथवा रोटी अपने आप न उठाता। कभी उनको मेरे भीतर जाने का भान नहीं रहा। अथवा यह जानकर कि अपनी दुकान की कोई वस्तु थैली आदि उठाने आया होगा, भीतर न आतीं, रात्रि को जब पूछतीं और मैं भूख लगने की कहता तब उन्हें पश्चात्ताप होता और मेरी मां कहती अपने घर से भी भला पूछने की आवश्यकता होती है? तो मैं कह देता घर में अधिकार देवियों माताओं का होता है दुकान पर पुरुषों का। मैं ऐसी सावधानी न करूं तो बच्चे कैसे सीखेंगे?

माता की इस शिक्षा का प्रताप इतना बढ़ा कि जब मैं वानप्रस्थी हो गया, मेरा संसर्ग आम हो गया।

माता के रूप की छाप

टोबा टेकसिंह में आश्रम बना ! यज्ञों में स्त्री पुरुष बड़ी संख्या में आते तो स्वयं भी यही अभ्यास करता रहता था और अपने साधकों व्रतियों को भी यही कहता कि जब किसी देवी पर तुम्हारी दृष्टि पड़े अथवा कोई देवी तुम्हारे सामने आए तुम उस पर अपनी माता की छाप लगा लो और अपनी त्रिकुटि स्थान पर ऐसा अभ्यास हर समय करो कि मां के बाह्य स्वरूप का आकार बना रहे। और अभ्यास ऐसा परिपक्व हो जाए कि किसी भी देवी पर दृष्टि पड़ते ही वह मां का रूप प्रतीत हो। मां के आकार की छाप उस देवी के मुख पर बन जाए।

योग सीखना

मेरी मां में श्रद्धा और आस्तिकता बड़ी थी। जब १६२२ में मैं योग सीखने गया तो मेरे गुरुदेव स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज ने आज्ञा की कि योग मार्ग के पथिक 5 कोई दुर्व्यसन नहीं रखना चाहिए। तुम हुक्का तम्बाकू पीते हो इसका त्याग आवश्यक है वरना प्राणा-याम में हानि करेगा तो मैंने छोड़ दिया और अपने घर मेहमानों को भी पिलाना छोड़ दिया। मेरा कार्यव्यवहार आढ़त का था। व्यापारी लोग आते, उन्हें सर्वप्रथम

हुक्का पेश किया जाता, फिर जल। कहावत थी—मेहमान दी मेहमानी। पहले हुक्का पीछे पानी।

जब मुझसे हुक्का छूट गया तो दुकान पर तो दुकान के सेवक हर समय मौजूद रहते वे अपने आप सेवा करते परन्तु घर में जब कोई सम्बन्धी आ जाता तो धृष्टता से नहीं अपितु मेरे मस्तिष्क से ही प्रभुदेव या गुरुदेव के प्रताप से यह झूठी लोक मर्यादा उतर ही गई। घर में हुक्का रहने ही न दिया था तो मेहमान भले लोक दूसरे स्थान पर पी आते।

मेरी मां ने जब यह देखा तो उसने भी अपनी हुक्की (स्त्रियां भी चोरी चोरी पुरुषों से रात को कभी कभी पी लेती थीं वायु बादी के कारण) तोड़ दी कि जब मेहमान को नहीं पूछते तो अपने लिये भी अच्छा नहीं जंचता, नसवार सूंघने अथवा मुख में रखने का प्रायः सब देवियों का स्वभाव था। मेरी मां नानी भी नसवार सूंघती थीं, मुंह में नहीं रखती थीं।

तीर्थ यात्रा

१६४३ में जब मां की इच्छानुसार हरिद्वार गङ्गा स्नान के लिए मैं उसे ले आया तो मैंने कहा माता जी! यह तो तीर्थ स्थान है नसवार का त्याग न किया तो

स्नान का, तीर्थ यात्रा का क्या लाभ ? तो तत्काल छोड़ दी और डिब्बिया फैंक दी, तब मेरी मां की आयु ८० वर्ष से ऊपर थी।

मेरी माता में धैर्य्य और सन्तोष का अथाह गुण था। मैं अपनी माता की वे बातें नित्य प्रति की लिखता हूँ जिससे सर्व साधारण जनता तथा देवियों को लाभ पहुंचे यदि कोई आचरण में लावे तो। आधुनिक युग पुरानी माताओं के अनुभवों को तो मानता नहीं, परन्तु स्यात् किसी के भाग्य उदय भी हो जावें :—

कुछ अमूल्य बातें

चार बातें नित्यप्रति वह अपनी वाणी पर लाती थी:—

(क) प्रातः जागते ही भगवान् को नमस्कार करके अपने हाथ की हथेलियों को चूमती और परमात्मा से प्रार्थना करती कि मेरे हाथों में बरकत दे, किसी के आगे यह हाथ न पसारूं।

(ख) दोपहर के समय भोजन सामने रखते विष्णु भगवान् का नाम मन में लेकर हाथ जोड़ नमस्कार कर देती (न जाने मन में क्या प्रार्थना करती) और भोजन कर चुकने पर हाथ जोड़ कर यह शब्द कहती :—

डेंदा, पलेंदा जीवें (अर्थात् मेरा दाता, पालन कर्ता जीता रहे)।

(ग) रात्रि को सोते समय दो प्रकार के शब्द बोल कर सोती :—

(१) प्रार्थना रूप में—भले का भला, बुरे का भी भला।

(२) हकों रखीं नाहकों रखीं अर्थात् हक नाहक से रक्षा करो।

(घ) नयन प्राण कायम रखीं, हलदा चलदा टोरीं, किसी का मोहताज न करीं। ज़ुल्म ज़ारी कनों बचावीं, हाकिम दी कचहरी कनों बचावीं।

अर्थात् मृत्यु समय तक दृष्टि तथा श्वास गति ठीक रहे, शरीर में शक्ति हो, पराधीन न करना। अत्याचारी, चाटुकारी से बचाना, न्यायालय में जाने से बचाना।

मां का स्वभाव

(१) अपनी सन्तान और अपनी बहुओं की कभी किसी के सामने गिला न करती थीं।

(२) झगड़े, कलह, शोर से बहुत घबराती और तुरन्त अपने भीतर घर चली जातीं। किसी के अधिक बोल देने पर भी चुप हो रहतीं, प्रत्युत्तर देकर बात को न बढ़ातीं।

(३) अपनी बहुओं अथवा पुत्र पोतों से कभी दुःख या प्रतिकूलता पाती तो उपेक्षा वृत्ति कर लेती, मुंह से कुछ न कहती, न शिकायत करती।

(४) जब खाने के लिए गेहूँ लेनी हो तो पहिले दो चार दाने मुंह में चबा कर नमूना के देखती। जिस गेहूँ में चीड़ होती वही लेती।

(५) आटे को इतना खूब गूंथती, बार बार मलती रसाती कि रोटी नरम और बहुत स्वादिष्ट बनाती और अन्न को बढ़ा देतीं।

(६) सब्जी, दाल थोड़े घृत से बहुत स्वादिष्ट बनाती खाने वाला थोड़े घी को भांप ही न सकता।

(७) मेरा लोगों में बड़ा मेल जोल था। फिर गरीबी आ जाने पर जब कोई मेहमान मिलने आ जाते, तो तत्काल कढ़ाही तेल की रख कर बेसन के पकोड़े बना कर थाली में मेहमानों के सामने ला रखती मेरी लाज रखने के लिये।

मेरी निर्धनता

१६२७ में मुझे ऋण चुकाने के लिये नौकरी करनी पड़ गई। एक कारखाने में मैं एकाउन्टेन्ट (मुनीम) के पद पर लगाया गया। तब मेरी माता थोड़े से तेल में ऐसी सब्जी बनाती कि हमको पता ही न लगता, न बच्चों को न मेरी नानी को जो घर के भीतर समीप बैठी हुई होती। लस्सी मैनेजर के घर से आती उसे छान कर उस छिटकियों से रोटी चोपड़ा करती, लस्सी हमको पीने को

देती और घी केवल हवन के लिए ही रहता।

एक दिन अकस्मात् मैंने देख लिया कि तेल में सब्जी बना रही है। मैं मुख से बोलने लगा ही था कि हाथ के संकेत से अपना मुख बन्द करके समझाया कि चुप रहो! नानी को पता न लगे। छः मास तक ऐसा निभाया।

यह थी मेरी निर्धनता में मेरी स्तोतव्य मां की बात मेरी लाज रखने की।

(८) कभी अपने बरतन, मटके, सुन्धड़ा, घड़ों, छाछ की मटकी को खाली न होने देती। लस्सी लेने वाला कोई आता तो जितनी लस्सी देती उतना जल और डाल देती, कभी खाली न होने देती और न याचक को निराश लौटाती।

(९) सब बरतनों, वस्तुओं की रात्रि को दैनिक पड़-ताल संभाल करती।

(१०) दिन हो अथवा रात्रि, कभी झूठे बरतन न रहने देती, सदा शुद्ध रखती। यह सब कार्य घरेलू तो और भी बहुत माताएं जो सुघड़ हैं करती हैं, शेष सब सामान्य रूप से घर के काम करती हैं। ये देवियों के लिये शिक्षाप्रद बातें हैं परन्तु इससे अधिक बातें जिनके कारण मैं अपनी माता को अपना जीवन उदर पूरक नहीं

अपितु जीवन रक्षक के रूप में मानता हूँ वे बहुत ध्यान देने योग्य हैं।

इतनी अतीव निर्धनता हो, उदर पालने के लिये आवश्यकता हो, दिन रात अपने घर की चार दीवारी में बैठ कर श्रम तप करना, अपने यौवन काल में अपने सदाचार की रक्षा करना, और बच्चों के आचार विचार का ध्यान रखना और अति प्रेम की रीति से सुलझाना जो मेरे जैसे भोले भाले सरल बच्चे के मस्तिष्क में बैठ जावें, साधारण देवियों का काम नहीं ·

प्रभु दया

प्रभु देव ने मेरी मां की और हमारी लाज पूज्या नानी जी की छत्र छाया बना कर अपने मङ्गल वरद हाथ द्वारा कैसी बचाई ! मैं भी समझता हूँ कि वह सविता देव मेरी मां नानी का गुप्त प्रेरक गुप्त रक्षक बना रहा।

मेरी नानी ने भी सारी आयु वैधव्य में काटी। मेरी अम्मां अभी गर्भ में थी कि मेरे नाना जी का स्वर्ग वास हो गया परन्तु मेरी नानी एक सच्ची तपस्विनी सती साध्वी सिंहनी ईश्वर भक्त और सदाचार की दिव्य मूर्त्ति प्रसिद्ध थी, उसी की छत्र छाया में भगवान् ने हमारा उत्थान और कल्याण किया। मेरी नानी ९०-९५ वर्ष की आयु में दिसम्बर १९४२ में गुजरी।
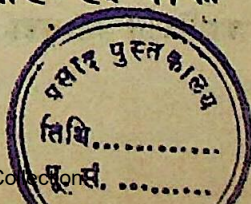
प्यार भरी मार

मैं सातवीं श्रेणी में पढ़ता था। ग्रीष्म अवकाश के दिनों में स्कूल से घर आया। मेरा एक साथी सीता-राम लड़का था उसने कहा क्या पढ़ना है? साबुन साजी करके एक बड़ी दुकान बना लें और हजारों रुपया कमा लेंगे। स्कूल में तो साबुन बनाना सीख आए हो इससे हम शीघ्र धनी बन जावेंगे। पढ़ना तो विपत्ति है। ऐसे शेख चिल्ली के विचार पक्क गए। सारा मास बीत गया। हम धर्मशाला में जहां बड़े बड़े चौधरी निकम्मे (जिनको दुकान अथवा घर का कोई काम न था) के साथ सारा दिन बिता देते। स्कूल खुलने में दो दिन बाकी थे। मेरी नानी को पता लगा कि टेका तो मीता की संगत से चौड़ चपट हो गया है। वह तो साहूकार का लड़का है पढ़े न पढ़े, यह निर्धन क्या करेगा? घर से दौड़ी आई। शनि-वार का दिन था, सूर्य अभी अस्त नहीं हुआ था। धर्म-शाला के भीतर आकर मुझे दूर से बुज्जा दिया और कहा लखलानत है तुझे! हम गरीब विधवाएं दिन रात श्रम तप कर कर, चक्की पीस पीस कर तुमको पढ़ा रही हैं, अब एक वर्ष शेष रह गया है और तू दुकान की आयोजना बना रहा है। तुझे लज्जा नहीं आती, क्या

करेगा। हम कहां से पैसा लावेंगी तुम्हारी दुकान के लिये। उठो! कुछ लज्जा है तो धर्मशाला को छोड़ो, स्कूल का जिमगी काम करके परसों सोमवार को स्कूल में उपस्थित हो जाओ।

मुझे बड़ी लज्जा आई। मैं उठा, घर में पहुंच कर बस्ता उठाया, कमरे की छत पर चढ़ गया। स्कूल का सारा गणित का काम समाप्त करके उठा। लिखाई का काम रविवार को कर डाला। भय तो कापियों की लिखाई का काम दिखाने का था। वह सब कर डाला। और सोमवार स्कूल जाकर हाजिर हो गया।

मां की दया

सन् १८९२=१९४९ विक्रमी में मेरे पिता को मेरे छोटे चाचा ने क्रोध में आकर एक शहतीरी सिर पर मारी जब पिता जी सोने के लिये पौड़ियों पर चढ़ रहे थे। लगते ही धड़ाम से नीचे गिर पड़े और बेसुध होकर मर गये। मेरी माता अभी जागती थी। धड़ाम की आवाज़ सुन कर उसका माथा ठनका, उसका दिल दहल गया और कहा जेसा! (मेरे चाचा का नाम था) यह कैसा धड़ाम हुआ। वावेला मच गया। लोग इकट्ठे हो गये। पुलिस स्टेशन पास था। रात्रि की आवाज थी फैल गई। पुलिस आ गई। मां नानी ने बयान दिया कि जेसा ने

कड़ी मारी है वे धड़ाम से गिर कर बेसुध हो गये। नब्ज देखी तो थी नहीं। उसी समय जेसाराम को हथकड़ी लगा कारावास में डाल दिया।

अभी थोड़ा काल बीता था कि मेरे पिता माता ने जेसाराम का विवाह कराया था। वह नव विवाहिता जिसके नाखूनों से अभी मेंहदी भी नहीं उतरी थी, सुहाग का चूड़ा पहना हुआ है, वह जार जार रोने लगी। मेरी मां नानी को दया आई कि हम तो विधवाएं वैधव्यकाल बिता रही हैं, यह बेचारी नव विवाहिता जिसने संसार का अभी कुछ देखा भाला नहीं, सारी आयु इसकी नष्ट हो जावेगी यदि इसका पति फांसी चढ़ गया। पंचायत इकट्ठी हुई। सब ने कहा सारा घर नष्ट होने से कुछ तो बचा लो। बयान से इन्कार कर दो। दिन हुआ, थानेदार ने बयान लिखना शुरु किया। मेरी मां नानी बदल गईं। कल रात्रि को ऊपर ऊपर की शीघ्रता की कार्यवाही हुई थी। थानेदार ने ज्येष्ठ मास की कड़ी धूप में मेरी मां नानी को भूमि पर बिठा दिया। भूमि तपती है, तृषा लगती है जल नहीं पीने देता। भूख लगती है, रोटी खाने का निषेध कर दिया। छोटा बच्चा मां की गोद में था उसे स्तन का दूध पिलाने से रोक दिया, घर में मातमपुरसी (सहानुभूति प्रकट करने) के लिए लोग

सम्बन्धी, मित्रजन आ रहे हैं, वहां उनको बिठाने वाला कोई नहीं रहा। थानेदार ने कहा जब तक तुम पहिला सच्चा बयान न दोगी इसी भांति सख्ती करूंगा।

पंचायत को थानेदार कहता इन देवियों को समझाओ। पंचायत का तो यही मत था। ऊपर ऊपर से जाकर वापस आकर कह देवें, श्रीमान् जी! वह नहीं मानतीं। कहती हैं सीढ़ी पर चढ़ते सिरको चक्कर आगया और गिर पड़ा और बेसुध होकर मर गया। छोटा बच्चा सिसक सिसक कर बिना दूध के मर गया। मां नानी ने यह भी सहन किया परन्तु नव विवाहिता के विधवा होजाने के दुःख को सहन करना स्वीकार न किया अन्ततः पंचायत वहां के आनरेरी मैजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी सरदार कौड़ाखान के पास गईं। उसे सारा सच्चा वृत्तान्त गुप्त रूप से अवगत कर दिया और अपना मत और नीति भी बता दी कि अब आपके अधिकार में है कि इस सारे वंश का नाश करो अथवा बचाव करो। मैजिस्ट्रेट ने बयान ले लिया और जेसाराम को १॥ वर्ष का दण्ड देकर सबको विमुक्त कर दिया। जैसाराम १॥ वर्ष दण्ड भुगत कर घर आ गया।

मेरी मां नानी का दया का भाव देखिये और इस पर तुर्फा यह कि मेरी नानी दिसम्बर १९४२ में और

माता २६ नवम्बर १९४४ को परलोक सिधारीं, पिताजी का स्वर्गवास १८९२ में हुआ। इस ५०-५२ वर्ष तक मेरी मां नानी ने हम बच्चों के सामने कभी यह चर्चा नहीं की। चाचा के विरोध में हमारे अन्दर द्वेष वृत्ति को उपजने नहीं दिया। वाह री ऐसी मां! तेरी जय हो! जय हो!

माता नानी थीं तो दोनों वृद्धा परन्तु नानी में तो प्रभु की ऐसी शक्ति प्रदत्त थी कि कुटिया से टोबा टेकसिंह शहर एक मील के करीब दूर था, नानी मार्ग में बिना रुके चली आती थी, एवं अन्तिम वर्ष में उन्हें कान से कम सुनाई देता था। माता जी मार्ग में कई बार विश्राम लेकर चलतीं। सम्वत् १९७४ विक्रमी में मां ने कहा मेरी दृष्टि कमजोर हो रही है, आंखों के डाक्टर को दिखाया, उसने कहा मोतिया उतर रहा है। ६ मास पकने में देर है। फिर सम्वत् ८२ में गोजरा के डाक्टर को दिखाया तो उसने कहा छः मास अभी पकनें को देर है। फिर कई वर्ष बाद दिखाया तो उसी डाक्टर ने कहा अभी छः मास देर है। प्रभु कृपा से अपनी आंखों से अन्त तक आराम से काम लेती रही।

मेरी मां नानी में बड़ा गुण यह था कि किसी का भी थोड़ा सा गुण देखतीं तो उसका यश गातीं। कभी ईर्ष्या का अवगुण तो मैंने अपनी आंखोंसे उनमें नहीं भांपा।

किसी को थोड़े से उपकार को बहुत मानती थीं। मेरी बहिन में नानी के गुण और सहनशक्ति थी। मेरे भ्राता में मेरे पिता की वीरता शारीरिक शक्ति और पर सेवा का गुण था और मेरे में मां के गरीब दिल होने के चिन्ह समा गए। न मैं विद्या प्राप्त कर सका, न अन्न धन दान दे सका, न तन न सेवा परोपकार कर सका।

येषां न विद्या न तपो न दानं, न चापि शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्य लोके भुवि भार भूतः, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

जिन लोगों के पास न विद्या है न तप न दान है और न शील और जिनके पास धर्म भी नहीं है वे संसार में पृथ्वी पर भार स्वरूप होकर मनुष्य के वेश में पशु समान हैं।

फिर भी धन्यवाद है कि प्रभुदेव ने माता नानी की भक्ति की आशीर्वाद दिलाई, इसलिए मैं औरों को तो जोर नहीं दे सकता परन्तु अपनी सन्तान को यही कहता हूँ कि वह यजुर्वेद के अध्याय १६ का २० का खूब पठन मनन करें और वह तो आज्ञाकारी हैं ही अपनी सन्तान को अपनी तरह आज्ञाकारी बनाने के लिए सुनाया करें।

पुरस्कार

मैं तीसरी कक्षा में पढ़ता था, १८६४-१८६५ की बात है। मेरे स्कूल के अध्यापक ला० देवीदास जी थे

(दायरा दीन पनाह के निवासी थे)। नार्मल पास थे। उन दिनों नार्मल पास को ८) रु० वेतन मिलता था। उनकी पगड़ी मलमल की बहुत फट चुकी थी। एक दिन वे नई पगड़ी ले आए और पुरानी उतार कर मुझे दे दी कि लो "टेकचन्द !" तुम अपनी कक्षा में चतुर हो, तुम्हें पुरस्कार देता हूँ। मैं लेकर मां के पास आया और कहा, उस्ताद जी (अध्यापक महोदय) ने पुरस्कार दिया है। मेरी मां ने हाथ लगाया तो वह मलमल और फटने लगी। मन में मां ने विचार किया कि निर्धन अनाथ जान कर सहायता की है। ऊपर से पुरस्कार शब्द का प्रयोग किया है। मेरी मां की आँखों से अश्रु टपके और अपने को संभाल भी लिया ताकि टेका पर कोई कुप्रभाव अनाथपन तथा निर्धनता का न पड़े। पगड़ी को बड़ी सावधानी से धोकर सुखा कर उसकी तहबन्दी कर दी। सब फटे पुराने जर्जरित भाग अन्दर छिप गये और मुझे बन्धा दी और कहा कि तह बनाकर बांधने से कपड़ा चिरायु होता है और सुन्दर भी लगता है। देखना ! इसे खोल कर न बांधना। जब कभी खुल जावे तो आप न बांधना न किसी से बंधवाना। मैं बांध दिया करूंगी। मेरा उस पगड़ी से न जाने कितना काल बीत गया।

मेरा विवाह

मिडिल पास कर लेने पर मेरा विवाह हो गया। दो तीन वर्ष में फिरता रहा, कभी नौकरी, कभी खाली। १६०६ में स्थायी पटवारी हुआ। दस रुपया वेतन था। एक रुपये से मैं हवन करता, एक रुपया किराया मकान का देता, एक रुपया फुटकर व्यय के लिये रखा और बाकी ७) रु० में हम चार जीव थे, मां, नानी, मैं और मेरी धर्मपत्नी। मेरी मां उन सात रुपयों में निर्वाह करती। ज्वार, बाजरा, चावल सस्ते थे, गेहूँ की अपेक्षा। दिन रात हम ढोढे (बाजरा ज्वार की रोटी) लस्सी के साथ खाते थे। रात्रि को भी लस्सी के साथ खाते। केवल मैं रात्रि को गेहूँ की रोटी खाता। दिन को हम सब ढोढे खाते। मेरे पहनने की एक ही पोशाक थी पाजामा, चोला और पगड़ी। प्रति रविवार को मां खार (सोडा) चढ़ा देती और तीनों वस्त्र उसमें उबाल कर धो देती और मेरी निर्धनता पर परदा डालने के लिये मुझे एक अंगोछा बन्धवा कर युक्ति करतीं और कहता कि तुम जाप करने बैठ जाओ। आने जाने वाले स्वयं देख कर वापस चले जायेंगे। पटवारी का उस युग में ग्राम में बड़ा मान होता था। दोपहर को मां वस्त्र पटवारखाने (जो मेरे घर के

पास ही था) में पहुंचा देती, पाजामा चोला तो रविवार को धुल जाते और पगड़ी का तहबन्दी कर बान्धने की शैली मेरे बचपन से चली आती थी। अब भी में सप्ताह में उसका तह बदल कर सफेद तरफ ऊपर कर देता, इस विधि से पगड़ी मास में एक बार धुलती। वस्त्र पहन में घर में भोजन करके चला जाता और लोगों जिमींदारों से फिर भेंट वार्ता होती।

ग्रामों में सब्जियां तो होती नहीं, बथुआ का साग खेतों में पुष्कल बिना मूल्य के मिलता है। मेरी मां दिन रात उसी का रायता बनाए रखती। कभी साग भी चढ़ा देती। सीतपुर से सब्जी आती थी बैंगन चार आने प्रति मन, करेला आठ आने मन, शलजम दो आने मन। हम एक बार लेकर सुखाते भी और खाते भी थे।

मेरे मुहल्ले में मेरे जिमींदार लोग ही रहते थे। मैंने मां से कह रखा था कि मुझे किसी जिमींदार की कोई चीज न खिलाना। मां ऐसी बुद्धिमत्ता से काम करती। सब देवियों से मेल मिलाप रखती परन्तु सब्जी का लेन देन न रखती। सब लोग नीचे बसते थे हमारा किराये का मकान ऊपर था लस्सी के लिये मां की आज्ञा से ६) रु० में एक बकरी ली जो प्रातः सायं ढाई सेर दूध

देती, दूध और लस्सी पर्याप्त हो जाती।

गणपति जब उत्पन्न हुआ तो प्रभु कृपा से एक बूढ़ी गौ सस्ती मिल गई, वह बहुत पर्याप्त मात्रा में दूध देती। मक्खन भी बहुत निकलता। उसके चारा परवरिश के लिए शहर के समीप वाले कूप पर एक कियारा (छोटा भाग खेत का) ले लिया। हलवाही, बीज, पानी के दाम जिमींदार को दे दिया करता था। तब हलवांही मजदूर की मेहनत दो आने दैनिक थी, इससे हमारा घास चारा तूड़ी बहुत बन जाती।

मेरी मां नानी के हृदय और मस्तक में भगवान् ने ऐसी दात प्रदान की थी कि उन्होंने कभी भूल कर अथवा विनोद में यह नहीं कहा कि टेका! हमारी सारी आयु परिश्रम में कटी, अब तुम राज्य कर्मचारी हो, अब हमारे विश्राम सुख के दिन आये थे, अब भी हमें लस्सी से रोटी खानी पड़ती है अपितु बड़ी प्रसन्नता से मेरे धर्म व्रत की रक्षा की। प्रभु देव की दया और माताओं के आशीर्वाद से शीघ्र ही ढाई-तीन वर्ष में मेरी वेतन वृद्धि हो गई। मैं सिविल में आ गया।

मेरे धर्म व्रत की रक्षा

१९१३ की बात है कि मैं तहसीलदार साहब का

रीडर था वह तहसीलदार ए० एम० दीन क्रिस्तान थे। बहुत पुराने अनुभवी, योग्य वयोवृद्ध थे। वे अपने गुप्तचरों के द्वारा सब कर्मचारियों, जिमींदारों के व्यवहार के वृत्तान्त लिया करते थे। ईसाई होने से उनका समस्त जिले में मान था। एक दिन चपरासी से कहा कि जब हमारे लिये लकड़ियों के ऊंट लाओ तो एक भार मुन्शी (मेरे) के घर भी डलवा देना। वह अल्प वेतन वाला है उसका निर्वाह कठिनता से चलता होगा।

चपरासी एक दिन लकड़ियों के ऊंट का भार मेरे घर के बाहर डलवाकर उच्च ध्वनि से कह गया कि माताजी! यह लकड़ियां पड़ी हैं, भीतर उठवा लेना मेरी माता तो स्त्री जाति थी कैसे उठवाती। जब मैं न्यायालय से मध्यान्ह को भोजन करने घर आया तो लकड़ियां बाहर पड़ी देखीं। मां ने पूछा कि किस को लकड़ियां डालने के लिये कहा था कि वह बाहर ही फेंक कर चला गया। मैंने कहा, मुझे तो ज्ञान नहीं, न मैंने किसी को कहा था। अभी बाहर पड़ी रहे, मैं न्यायालय में जाकर पूछताछ करूंगा। मैंने जाकर चपरासी से पूछना चाहा तो उसने स्वयं ही पूछ लिया कि लकड़ियां तहसीलदार साहब की आज्ञा से डलवा आया। मैंने कहा कृपया उठवा लीजिये, मैं प्रयोग में नहीं लाऊंगा। चपरासी मेरे व्रत से परि-

चित था। उसने उठवा लीं। यह ज्ञान नहीं कि उसने अपने काम लगाईं अथवा साहिब के घर पहुंचवाईं।

दूसरी घटना

साहिब ने अपनी मेमसाहिबा (पत्नी) से कहा कि हमारा मुन्शी बालबच्चों वाला है। वेतन उसका थोड़ा है। सुना है कि उसके घर में खटिया थोड़ी हैं, कुछ भूमि पर सोते हैं कुछ खटिया पर। यहां से एक खटिया भिजवा दो। दूसरे दिन मेमसाहिब ने चपरासी भेज कर दयाभाव से मेरे बच्चों को स्कूल से बुलवाया। एक मेरा भाञ्जा त्रिसंदाराम और दूसरा मेरा पुत्र गणपति। मुख्याध्यापक से आज्ञा लेकर चपरासी उनको मेमसाहिबा के पास ले आया। मेमसाहिबा ने प्यार किया। चावल अन्दर से निकाल लाईं, दोनों की झोलियां भरदीं और चार चार आने साथ दिये कि जाओ, घर में माता को जाकर देना, वह तुम्हें चावल बनाकर खिलायगी। बच्चे दोनों चावल घर ले गये। मां ने पूछा कहां से लाए? कहा, मेमसाहिबा ने दिये। मां ने पूछा! पिता जी ने कहा है? बच्चों ने कहा, हम उधर नहीं गए। मां ने कहा, अभी अभी वापस जाओ मेमसाहिबा को वापस दे आओ। बच्चों ने कहा, वह न लेवे तो? मां ने कहा

तुम बिना कहे उसके सामने झोलियां उलटा देना और पैसे साथ रख देने और भाग आना। तुमको फिर बुलाए, तुम मत जाना, उत्तर भी न देना। ऐसे ही तहसीलदार साहिब ने चारपाइयों की बात की कि सुना है मुन्शी! भूमि पर सोते हो। तो मैंने क्षमा मांगी और कहा, हमारे पास पर्याप्त प्रबन्ध है। बच्चे मां के साथ सो जाते हैं और मेरे लिये चारपाई है। हमारा गुजारा ठीक चल रहा है।

मेरी माता इस प्रकार से मेरे व्रत की रक्षा करती रही है। लोक मर्यादा का भी पालन पूरा करती। किसी को निर्धनता का ज्ञान भी न होता। सन्तोष से वह कभी अपने को अथवा मुझे गरीब का शब्द भी अच्छा न लगने देती और इधर धर्म की पूरी पूरी रक्षा करती।

1821 आदर्श विवाह, आदर्श संगठन

१९३७ में मेरे दो पुत्रों का विवाह था। माता जी से मैंने कहा मेरे पास ७५) रु० हैं। प्रेमी भक्त तो चाहते हैं कि हम ठाठबाठ से विवाह रचायेंगे, रुपये भी लाए मैंने वापस किये। मैं अपनी स्थिति से अधिक नहीं करना चाहता न बच्चों को सारी आयु उनके उपकार का ऋणी बनाना चाहता हूँ, दोनों का विवाह ७५) रु० में

करना चाहता हूँ, कैसे करोगी ? मां नानी दोनों ने कहा, बेटा ! 'हम तेरे साथ हैं।' मान अपमान गिला नेकी की हमें चिन्ता नहीं। 'हमें तुम्हारे धर्म व्रत की सहायता करनी है।' मां नानी ने मेरी बहिन और बुआ को बुलाया और कहा कि तुम्हारा भ्राता ऐसा करना चाहता है तुम कैसे करोगी ? उन्होंने कहा 'हम भाई के साथ हैं।' हमें लेने देने की इच्छा नहीं। मैंने कहा मैं यजुर्वेद का यज्ञ करूंगा, दोनों पुत्रों को यजमान बनाऊंगा। यज्ञ शेष जनता के लिये बांटो करूंगा और कुछ नहीं करूंगा किसी से तंबोल आदि नहीं लूंगा। जो मैं लोगों को दे चुका हूँ सो उनका रहा। बरात भी नहीं ले जाऊंगा। मां ने मेरी बहिन बुआ को कहा कि तुम्हारा भ्राता वान-प्रस्थी है, जनता में अल्प व्यय का प्रचार करता है, दिखावे के पक्ष में नहीं। यदि यह आप आचरण न करे तो जनता पर क्या प्रभाव पड़ेगा। जब उसका जीवन सादा है तो वैसे ही विवाह भी सादगी से करना चाहता है।

मां का ऋण कौन चुकाए ?

मेरी आयु ३३ वर्ष के लगभग थी। बालक छोटे थे। मेरी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। माता बिना गृहस्थ

में कितना दुःख होता है, ये वह जानते हैं जिनके बच्चे अनाथ बन जाते हैं। कहावत है :—

पिता मरे अध छोरा—मां मरे सारा छोरा (अनाथ)

शास्त्रकारों ने भी कहा है:—

माता यस्य गृहे नास्ति, भार्या चाप्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं, यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥

जिस पुरुष के घर में माता नहीं और जिस गृह में प्रिय बोलने वाली भार्या नहीं उस पुरुष को तो बन में ही चला जाना चाहिये क्योंकि उसके लिये घर भी जंगल के समान है। (पंचतन्त्र)

मेरे जैसे व्यवहारी मनुष्य के लिए जिसे दिन भर अवकाश नहीं मिलता और धर्म पालनार्थ वैदिक धर्मी आर्य होने के नाते दूसरा विवाह भी नहीं करता, बच्चों का क्या हाल होता परन्तु प्रभु कृपा से मेरी मां ने सब बच्चों को गले लगाया और जिस दयालु और करुणायुक्त हृदय से बच्चों को पाला पोसा उसका ऋण तो मेरी सन्तान भी नहीं चुका सकेगी। वैसे कोई भी मनुष्य अपने माता पिता का ऋण जन्म ज़न्मान्तर तक नहीं चुका सकता। मेरे पर तो मां के कई प्रकार के ऋण हैं।

मेरी अपनी मां में नितान्त ऐसी अगाध श्रद्धा थी

जैसी गुरुओं में है। वह गुरु का सार्थक रूप थी। जब मेरे अन्दर काम की पाप वासना जगती तो तुरन्त मां का आकार सामने आ गया और मुझे पतन से बचा लिया। माता का ऋण कौन चुकाए ?

वेद भगवान् ने तो माता का दरजा इन्द्र के बराबर माना है और इन्द्र सब देवताओं का राजा है "इन्द्रो विश्वस्य राजति।"

पुराणों में तो कथा आती है। शिवपुराण में लिखा है कि जब गणेश और स्कन्ध को गद्दी देने का प्रश्न पैदा हुआ तो गणेश आयु में बड़ा था परन्तु स्थूल बेढबी काया वाला, चलने फिरने में कष्ट अनुभव करता था और स्कन्ध आयु में छोटा परन्तु बहुत स्फूर्तिमान् और बुद्धिमान् था। शिव जी चाहते थे कि स्कन्ध उत्तराधिकारी बने। पार्वती मां चाहती थी गणेश बने, आयु में बड़ा भी है। मां की दृष्टि सदा निर्बल पर दया की रहती है, यह स्वाभाविक देखा जाता है। तब शिव जी ने युक्ति निकाली और कहा जो तुम दोनों में से पृथ्वी माता की परिक्रमा करके पहले हमारे पास पहुंच जावेगा उसे उत्तराधिकारी बनाया जायगा। यह सुनकर गणेश जी तो निराश हो गये और स्कन्द जी बड़े हर्षित हुए। स्कन्ध तो सुनते ही वेग से चल

पड़ा परन्तु गणेश जी अभी उठ ही रहे थे। गणेश जी निराश होकर चल तो दिये परन्तु आगे मार्ग में उदासीन होकर बैठ गए कि चला जाता नहीं, पृथ्वी माता की परिक्रमा तो क्या कर सकूंगा। इतने में नारद जी पहुंच गए। देखा गणेश जी निराश बैठे हैं। पूछा तो गणेश जी ने वृत्तांत सुनाया और अपनी अवस्था का वर्णन भी कर दिया। नारद जी बोले वाह ! निराशा की कोई बात नहीं, तुम वापस चले जाओ और माता पिता दोनों की परिक्रमा करके उनके पास ही बैठ जाओ। स्कन्द आवेगा तो तुम कह देना कि मैंने तो तीनों लोकों की परिक्रमा कर डाली। "माता पृथ्वी गरीयसी"—महाभारत।

तब गणेश जी बड़े प्रसन्न होकर वापस चले गये और माता पिता की परिक्रमा करके बैठ गये। जिस समय स्कन्द जी परिक्रमा करके लौटे तो देखा कि गणेश बेचारा तो अपने स्थान से हिला ही नहीं, अब गद्दी मेरी ही बनी बनाई है। मैं पिता की आज्ञा का पालन पूरा कर आया। नमस्कार करके बैठा और शिवजी ने पूछा, बोले अब कौन उत्तराधिकारी है। स्कन्द बोला मैं और गणेश बोला मैं। स्कन्द ने कहा मैं तो सारी पृथ्वी की परिक्रमा कर आया हूँ और तुम अभी बैठे हो। गणेश जी बोले मैं तो

तीनों लोकों की परिक्रमा करके कब से बैठा हूँ। देखो माता तो पृथ्वी है और पिता द्यौ लोक है। मैंने दोनों की परिक्रमा कर ली है, पूछ लो। तब से गणेश जी की पूजा होने लगी।

माता पिता सच्चे तीर्थ हैं

ओ मानव ! माता पिता तो सच्चे तीर्थ हैं, चैतन्य तीर्थ हैं। विस्तार से देखना हो तो लेखक का 'गङ्गा मय्या का प्रसाद' पढ़ें।

तीर्थ के लक्षण भी शास्त्रकारों ने यों किये हैं:—

"जनाः यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि।"

जिन करके जन समूह दुःखों से छूट जाते हैं वही तीर्थ हैं।

माता पिता की सेवा कौन नहीं करता, ध्यान देने योग्य अमूल्य बातें

जो मनुष्य मानव चोला पाकर अपने माता-पिता की सेवा भक्ति पूजा सत्कार नहीं करता वह बड़ा अभागा है। जब जब मनुष्य माता पिता को त्यागता है अर्थात् उनकी

सेवा और आज्ञा पालन नहीं करता, उसे क्या क्या फल मिलता है, इसे तनिक मानवता के नाते ध्यान से सुनोः–

(१) कामी सन्तान काम के कारण और

(२) मोह ग्रस्त अपनी सन्तान कारण,

(३) लोभी धन व्यवहार के कारण

(४) अभिमानी अहंकारी अपने मान व बड़ाई के कारण।

(५) क्रोधी अपने सड़ियल (चिड़चिड़े) स्वभाव के कारण माता पिता की सेवा नहीं करते।

अब इनको आगामी जन्म में किस रूप में फल मिलेगा। यह भयानक फल और अधिक सावधानी से सुनो :—

१—स्त्री काम के कारण जो पुत्र माता पिता की सेवा नहीं करता, आज्ञा पालन नहीं करता, भावी जन्म में उसे स्त्री सुख नहीं मिलेगा।

२—जो अपनी सन्तान में मोह ग्रस्त होने से सेवा नहीं करता वह भावी जन्म में सन्तान रहित होगा।

३—लोभ के कारण जो व्यवहार ग्रस्त रहता है और

सेवा नहीं करता, वह भावी जन्म में निर्धन रहेगा, निर्वाह के लिये दुःखी होगा।

४—अहंकार के कारण अपने मान बड़प्पन से माता पिता की सेवा न करने वाले अथवा अवहेलना करने वाले की भावी जन्म में मान प्रतिष्ठा नहीं होगी, वह अपयश ही पाता रहेगा।

५—क्रोध के कारण जो सड़ियल सदा मुंह कुढ़ाए रखता है, बात बात में माता पिता से बिगड़ पड़ता है, मुंह फेर कर बात सुनता है वह अनाथ रहेगा। अथवा अपनी सन्तान से दुःख कष्ट पाता रहेगा। और अपमानित होता रहेगा परन्तु यह तब हो सकेगा जब उनको भावी जन्म मनुष्य का मिले।

सौभाग्यशाली मानव! तू वेद भगवान् की आज्ञाओं को मान और विपत्ति तथा सम्पत्ति में मानवता की रक्षा कर! तू बढ़ेगा, खूब बढ़ेगा। देख, यजुर्वेद अध्याय १२ मन्त्र १५:—

ओ३म् सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान्।
मैनां तपसा मार्चिषाऽभिशोचीरन्तरस्याᳪ शुक्रज्योतिर्विभाहि॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्या को चाहने वाले पुरुष

(त्वम्) आप (मातुरस्याः) इस माता के विद्यमान् होने में (विभाहि) प्रकाशित हो (शुक्र ज्योतिः) शुद्ध आचरणों के प्रकाश से युक्त (विद्वान्) विद्यावान् आप पृथ्वी के समान आधार (मातुः) इस माता की (उपस्थे) गोद में स्थित हूजिये । इस माता से (विश्वानि) सब प्रकार की (वयुनानि) बुद्धियों को प्राप्त हूजिये । इस माता को (अन्तः) अन्तकरण में (मा) मत (तपसा) 'संताप से' तथा (अर्चिषा) तेज से (मा) 'मत' (अभिशोचीः) 'शोक युक्त' कीजिये । किन्तु इस माता से शिक्षा को प्राप्त हो के प्रकाशित हूजिये ।

भावार्थ--जो विदुषी माता ने (से) विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त किया 'माता का सेवक' जैसे माता पुत्रों को पालती है वैसे प्रजाओं का पालन करे वह पुरुष राजा के ऐश्वर्य से प्रकाशित होवे ।

नोट--जो सन्तान सेवक बन कर माता पिता की आज्ञा नहीं पालतीं, सेवा नहीं करती तो जैसे गुरु नानक देव ने अपने पुत्रों को गद्दी न देकर लहणा अपने नौकर के गद्दी दी सन्तान वंचित रही, ऐसे असेवक पुत्र का हाल होगा ।

ओ मानव ! मैं यह सत्य कहता हूँ कि अपने इस

७५ वर्ष की आयु के अन्दर अपने कुटुम्ब में और अन्य कुटुम्बों में अपने शहर में और दूसरे शहरों में जिन व्यक्तियों ने अपने माता पिता के हृदय संतप्त किये, जिनके माता पिता अपनी सन्तान से दुःखी रहे और अपने होश काल में मैंने अपनी आंखों से देखा, उन्होंने अपने जीवन काल में ही प्रत्यक्ष दुःख अपनी सन्तान से पाया। कहीं पुत्रों से, कहीं बहुओं से। जिनके बड़े पुण्य कर्म थे और उनको जीवन काल में कोई दुःख अनुभव नहीं हुआ और अभिमान करके कहते रहे कि यदि अपने कर्म ही श्रेष्ठ हैं, माता पिता का 'आशीर्वाद क्या कर सकता हैं।' उनका अन्त बहुत बुरा हुआ। कई पुत्र रहित और पुत्रकी लालसा में होकर मर गए और अपनी सम्पत्ति जिससे माता पिता को सुख नहीं दिया, वह सम्पत्ति भी अभि-योगों का कारण बन कर उनको दुःख देने वाली बनी।

खुशहाली में सभी मित्र बदहाली में नेड़े न

हमारे शहर में कोई हिन्दू देवी वृद्धा अथवा युवा, किसी वस्तु के क्रय के लिए बाजार में नहीं जाती थी। आजकल तो अवस्था ही और है। युवतियां स्वयं ही बाजार से सब्जी, वस्त्र आदि खरीद करने को जाती हैं। जब पिता जी का शरीर छूटा तो हम नितान्त निःसहाय

हो गए। चाचे भी घर मकान को छोड़ गए। भाव उनका यह था कि यदि हम एक ही मकान में रहे तो सारा भार विधवा और अनाथों का हमारे ऊपर पड़ जायगा। इसी समय के लिए कवि ने कहा है :—

स्याह बख्ती में कब कोई किसी का साथ देता है।
कि तारीकी में साया भी जुदा होता है इन्सां से॥

दूसरा भाव यह था कि अकेले निर्वाह न कर सकेंगे। अकेला मकान है, यह अपने आप छोड़ जायंगे, और नानी के घर जा बैठेंगे और हम फिर सारे आकर मकान पर अधिकार जमा लेंगे।

शहर में और हमारा कोई सहायक न था। तो मेरी नानी के भ्राता अपने ग्राम से जो हमारे घर से १२ मील दूर था, प्रति मास हर पन्द्रहवें दिन आकर हमारी सुधि ले जाते। जिस वस्तु की हमें आवश्यकता होती वह ले दे जाते। फ़सल के दिनों में वह हमारे लिये गेहूं मनोती कर लेते जो बहुत सस्ती पड़ती और इसी प्रकार घी का भी सौदा करते। अपने घोड़े पर एक दो मास के खर्च को लाद कर हमेशा लाते रहते। दस वर्ष पर्यन्त वे ऐसी सेवा करते रहे। फिर जब मेरी बहिन का विवाह हो गया तब मेरा बहिनोई जो शहर का था, समय समय पर वह हमारी

सुधि लेता। फिर जब मैं राज्य कर्मचारी बन गया फिर किसी की सेवा की आवश्यकता न रही। सच कहा है "हौंद का सब कोई ना हौंद का कोई नहीं" अर्थात खुश-हाली में सब मित्र हैं और बद हाली में नेड़े (समीप) कोई नहीं फटकता। फिर सब शहर के लोग मुझे अपना ही जानने लगे।

गरीबी प्रभु की अमूल्य उत्थानकारक दात है

जब मुझे अपनी माता नानी के परिश्रम तथा तप का दृश्य मेरे सामने आता है तो मैं कहता हूं, प्रभुदेव! अमीरी और गरीबी भी तेरी बड़ी प्रशंसनीय दात हैं। इसमें से ग़रीबी तो अमूल्य दात है। यदि ग़रीब न होते तो सुख प्रिय धनियों का कार्य न चलता। और धनी न होते तो निर्धन अपनी उदर पूर्त्ति कैसे करते? मैं प्रभुदेव की अपार दया का धन्यवाद करता हूँ।

प्रभुदेव! तूने मेरी मां नानी के शरीर में शक्ति दी और हम अनाथों के पालने के लिये दया और उत्साह प्रदान किया। दीप माला के दिन समीप आते तो धनी देवियां अपने घरों की दीवारों को पुतवातीं, उस युग में चूनाकली तो कोई करता नहीं था। मिट्टी के लेप से दीवारों

को सुन्दर बनाते थे। लकड़ी की सीढ़ी रखी हुई है और दो वृद्धा माताएं उस पर अपनी जान जोखों में डालकर मिट्टी का लेपा पूता कर रही हैं। सारे वस्त्र मिट्टी गारा से लतपत हो रहे हैं। उस समय की मज़दूरी का क्या कहना? जब सारा दिन श्रमी पुरुष ईंट ढो ढो तरखान मिस्त्री को देता है गारा बनाता, जल दूर से भर लाता है, कोई नलके न थे न कोई और प्रबन्ध था तब इतनी दिन भर की कमाई के बदल में दो आने के पैसे ही उसे मिलते थे तो बेचारी स्त्री माताओं के पल्ले क्या पड़ता होगा? फिर भी पेट पालने के लियेकमाना ही पड़ता था। उन लितड़े हुए वस्त्रों को कूप से जल खींच खींच कर मनों जल से मिट्टी उतारनी और और फिर उनको खार के टीन में उबालना और धोना साफ़ करना कितनी वीरता और तप है! तो मैं कहता हूं।,

ओ मानव! इन घटनाओं को देख कर प्रमादी न बनाना, ग़रीबी मोल न लेना, अदानी न बनना। यही देह है जिससे तू परलोक को और इस लोक में तू धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को सिद्ध कर सकता है। अच्छा, अभी मोक्ष न सही, न सही! इस लोक के लिए अर्थ और परलोक के लिए धर्म तो कमाले, जीवन बीत गया और बीत

जायगा। कुछ कर ले ! कुछ बना ले ! कुछ कमा ले ! प्रभु आश्रित यही तेरे काम आयगा।

उपसंहार

प्रिय मानव ! तेरा जन्म भक्ति के साथ हुआ। न तुझे ज्ञान था, न बल, न बुद्धि, विद्या न धन, केवल अपने साथ भक्ति लाया। जननी माता को नमस्कार और ओम् नाम को पुकार। इसी से तेरा सत्कार और तेरे माता पिता को बधाइयां मिलीं। भक्ति का प्रारम्भ नमस्कार है, मध्य आज्ञा पालन से और अन्त समर्पण से होता है तो भक्ति पूर्ण समझी जाती है। माता की भक्ति माता की आशीर्वाद दिलाती है जो प्रभुदेव निराकार माता जगत जननी की उपासना भक्ति के योग्य बनाती और बेड़ा पार करती है

माता परमेश्वर की दूत है, प्रतिनिधि है, परमेश्वर से मिलाने की जामिन है। यही निराकार की साकार पूजा है। जब तक यह साकार पूजा जो पहिली मंजिल है पूरी न होगी, इस पर न चढ़ोगे, आगे निराकार की उपासना कैसे कर सकोगे ?

प्रिय ? यह सारा संसार अहंकार का ही विकार है इससे

अपने को बचा। माता पिता गुरु अतिथि के आगे अहंकार को झुका। यह नमस्कार मातृवन्दना जन्म दिन तक समाप्त नहीं वह तो प्रभु ने एक नमूना जन्म से दिखा दिया। वेद भगवान् ने तो स्पष्ट कह दिया:-

ओ३म् आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे।
मा हिं्सिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥
यजु० १९-६२ ॥

भावार्थ-जिनके पितृलोग जब समीप आवें अथवा सन्तान लोग उनके समीप जावें तब भूमि में घुटने टिका नमस्कार कर उनको प्रसन्न करें और पितर लोग भी आशीर्वाद देवें, विद्या और अच्छी शिक्षा के उपदेश से अपनी सन्तानों को प्रसन्न करके सदा रक्षा करें।

एक सज्जन स्वाध्याय शील ने मुझे कहा कि इसका अर्थ यह नहीं। मैंने कहा इस मन्त्र का देवता भी पितर है इसीलिये महर्षि ने यही अर्थ किया है।

ऋषि दयानन्द महाराज के पत्रों में एक पत्र में लिखा है---महाराज का एक भक्त कहता है कि भगवन्! मैं माता पिता की सेवा करता हूं। माता विमाता होने के कारण मुझ से प्रसन्न नहीं होती और पिता को भी प्रसन्न नहीं होने देती...महाराज ने उत्तर दिया कि तुम को तो

हृदय से सेवा करनी चाहिये और आज्ञा पालन भी। यदि वह प्रसन्न नहीं होती तो तुम अपनी तरफ से अवहेलना न करो। सत्कार सेवा माता की कभी नहीं छोड़नी चाहिये चाहे माता व्यभिचारिणी भी हो जाए या हो।

यह भाव उस पत्र का है।

अन्त में प्रभु देव से यही प्रार्थना करता हूं कि

ओ३म् भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो।
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥ साम वेद मन्त्र १७३

हे शतक्रतो! सर्वैश्वर्य इन्द्र प्रभो! यदि आप हम अज्ञानी जीवों को सुखी करना चाहते हैं तो हमें कल्याणतम ज्ञान रूप धन का दान दीजिये! जिससे हम अपनी जननी पालनी माता का आशीर्वाद पाते हुए तुझ निराकार की सच्ची भक्ति के उपासक बन सकें और तेरे आशीर्वाद के पात्र बनें। ओ३म् शम्

वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर
२५-११-६१

—प्रभु आश्रित

Sarvadeshik Press, Delhi-7

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी द्वारा लिखित पुस्तकें

पथ-प्रदर्शक	॥≈)	सावधान	
गायत्री-रहस्य सजिल्द	२।)	संभलो	
अध्यात्म अनुभूतियां	॥)	अब जागो	
मतलब की बात		अनमोल मो	
कर्म भोग चक्र सजिल्द	१॥≈)	प्रार्थना	
,, ,, अजिल्द	१।≈)	यज्ञ और जी	
वर घर की खोज सजिल्द	॥।)	अमृत के ती	
,, ,, अजिल्द	॥)	दुर्लभ वस्तु	
गृहस्थ आश्रम प्रवेशिका	॥)	अद्भुत किर	
गृहस्थ सुधार बढ़िया सजिल्द	२।)	अद्भुत वर्ष	
,, ,, साधारण ,,	१॥)	प्रभु का स्वरूप	
,, ,, ,, अजिल्द	१)	डरो वह बड़ा जबरदर	
यज्ञ रहस्य	॥।)	मन्त्र योग प्रथम भाग	
सन्ध्यासोपान	॥।)	,, ,, दूसरा भाग	
मनोबल	॥≈)	,, ,, तीसरा भाग	१)
बिखरे सुमन	१)	युक्ति युक्त गुरु	।=)
जीवन यज्ञ	॥≈)	साधना के चार्ट	≈), ≡), ।)
चमकते अंगारे	।-)	सेवा धर्म	॥)
गंगा मय्या का प्रसाद	।=)	सप्त रत्न	।≡)
स्वप्न गुरु	।≈)	समाज सुधार	≈)
काया कल्प	१।)	गायत्री कुसमांजली	-)
भाग्यवान गृहस्थी	-)	जीवन उत्थान के साधन	-)॥
आदर्श ,,	-)	नवरात्रा	-)
विचार विचित्र	॥)	(आचार्य सत्य भूषण जी लिखित)	
रचना रहस्य	॥≈)	सन्ध्या प्रभाकर	॥।-)
रचना विचित्र	॥≈)	देवयज्ञ मर्यादा	।-)
योग युक्ति	॥।)	अध्यात्म सुधा नं० ४	१)
उत्तर काशी का प्रसाद	॥।)	अध्यात्म सुधा नं० ५	।=)

जवाहर ग्लास कम्पनी, कुतुब रोड, दिल्ली।

सार्वदेशिक प्रेस, दिल्ली।